सत्य का दर्शन

प्रवचन-क्रम

1. चित्त का निरीक्षण...2
2. प्रेम है दान स्वयं का...18
3. परिस्थिति नहीं मनःस्थिति..30
4. जीवन यानी परमात्मा...45
5. विचार नहीं, भाव है महत्वपूर्ण...61
6. स्वतंत्रता के सूत्र...72

सत्य का दर्शन
पहला प्रवचन

चित्त का निरीक्षण

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी घटना से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।
एक बहुत बड़े नगर में एक बहुत बड़े विशाल भवन के सामने बहुत भीड़ इकट्ठी थी। सत्रहवीं मंजिल से एक युवक उस भवन पर से कूद कर आत्महत्या करने को था। लोग उसे समझा रहे थे। सोलहवीं मंजिल पर भी लोग इकट्ठे थे और उस युवक को बचाने की कोशिश कर रहे थे। उस युवक ने अपने मकान के सब तरफ से द्वार बंद कर रखे थे और ऐसा प्रतीत होता था कि वह आज कूदे बिना नहीं मानेगा। और सत्रहवीं मंजिल से कूदने का क्या अर्थ हो सकता था? सोलहवीं मंजिल पर जो लोग इकट्ठे थे उनमें से एक बूढ़े ने उस युवक को समझाने की कोशिश की। उस वृद्ध ने कहाः बेटे, अपने मां-बाप का खयाल करो, यह तुम क्या कर रहे हो? वह युवक ऊपर से चिल्लायाः मेरे कोई मां-बाप नहीं हैं। उस बूढ़े ने कहाः तो अपने बच्चे, अपनी पत्नी का स्मरण करो, उनके जीवन का खयाल करो, यह तुम क्या कर रहे हो? उस युवक ने कहाः माफ करें, न मेरी कोई पत्नी है और न मेरे कोई बच्चे। लेकिन वृद्ध भी हार मानने को राजी न था। उसने अंतिम कोशिश की। उसने कहाः तुम किसी को तो प्रेम करते हो, अपनी प्रेयसी का ही खयाल करो, उसके जीवन का। उस युवक ने कहाः मुझे स्त्रियों से घृणा है। अंतिम बार समझाने की कोशिश में वह वृद्ध आदमी चिल्लायाः तो अपना ही खयाल करो, अपने ही जीवन का। वह मृत्यु के लिए तैयार युवक हंस पड़ा और बोला, काश! मुझे यही पता होता कि मैं कौन हूं, तो आत्महत्या का सवाल ही नहीं होता। लेकिन मुझे पता नहीं है कि मैं कौन हूं, मैं किसका खयाल करूं?
आज करीब-करीब सारी मनुष्य-जाति इस हालत में आकर खड़ी हो गई है। चाहे हम किसी भवन की सत्राहवीं मंजिल से खड़े होकर आत्महत्या करने को तैयार न हों, लेकिन जीवन में, जीवन का सारा आनंद खो दिया है और हम जहां भी खड़े हैं, सिवाय मृत्यु की प्रतीक्षा के हमारे खड़े होने का और कोई अर्थ नहीं रह गया है। और कोई हमसे कहे कि जीयो। मां-बाप के लिए जीयो, पत्नी के लिए जीयो। पुत्रों के लिए जीयो। दूसरे के लिए जीना कभी भी बहुत गहरे में अर्थपूर्ण नहीं हो सकता, जो अपने लिए जीने में समर्थ नहीं उसके लिए। जो अपने लिए जीने में समर्थ है, वह दूसरे के लिए भी जी सकता है, जी पाता है। जो अपने भीतर आनंद को उपलब्ध होता है, वह दूसरों के जीवन में भी आनंद की सुगंध पहुंचाता है। लेकिन जो अपने भीतर ही इस प्रश्न से भरा हो कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। जिसे अपने जीवन का भी कोई बोध न हो। उसके जीने में कितना अर्थ हो सकता है, कितना आनंद हो सकता है?
एक मनुष्य ऐसी जगह होता, तो भी एक बात थी। सारी मनुष्यता ऐसी जगह आकर खड़ी हो गई है, जहां उसके सामने या तो व्यर्थ जीने का एक विकल्प है या इस जीवन को समाप्त कर लेने का। इन दो विकल्पों के बीच हम आज खड़े हैं। कोई राह, कोई मार्ग खोज लेना जरूरी है और इसके पहले कि हम उस मार्ग के संबंध में थोड़ा विचार करें, जो मनुष्य के जीवन को आनंद से और आलोक से भर देता है। इसके पहले कि हम उस दिशा में आंखें उठाएं, जहां से जीवन का दुख विलीन हो जाता है और आनंद की वर्षा शुरू होती है। यह जान लेना जरूरी होगा कि मनुष्य इस स्थिति में कैसे पहुंच गया है। बिना इस बात को समझे शायद हम उस रास्ते को ही नहीं खोज सकेंगे। यह पूछ लेना, पहचान लेना बहुत जरूरी है कि इतने विशाद की, इतने सन्ताप की, इतने चिन्ताओं की और दुख की यह स्थिति कैसे पैदा हो गई है।
एक और छोटी सी कहानी से मैं इस स्थिति को समझाने की कोशिश करूंगा और फिर जो मुझे आपसे आज कहना है, वह कहूंगा। बहुत पुराने दिनों की घटना है। एक राजमहल के सामने सुबह ही सुबह जब सूरज उगता था, एक भिक्षु ने आकर भिक्षा मांगी। राजा द्वार पर ही था। राजा ने पास खड़े नौकरों को कहाः जाओ, भिक्षु का पात्रा भर दो। लेकिन उस भिक्षु ने कहाः ठहरो, मेरी एक शर्त है। मैं तभी भिक्षा स्वीकार करता हूं, जब कोई मेरे पूरे पात्र को भरने का आश्वासन दे

देता है। क्या आप मेरे पूरे पात्रा को भर सकेंगे? मैं अधूरे पात्रा को भरा हुआ लेकर न जा सकूंगा। राजा ने कहा: तुम पागल हो क्या? इतना छोटा सा पात्र लिए हो। इतने बड़े सम्राट के द्वार पर खड़े हो, क्या तुम्हें संदेह होता है कि तुम्हारा पात्र हम पूरा न भर सकेंगे। उस भिक्षु ने कहाः मैं और भी राजाओं के द्वार पर खड़ा हुआ हूं। और आज तक मैंने इतना समृद्ध मनुष्य नहीं देखा, जो मेरा पूरा पात्र भर सके। इसलिए मैं यह शर्त पहले रख देता हूं। पीछे आपको पछताना न पड़े। सोच ले, मैं वापस लौट सकता हूं। भिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन भिक्षा यदि देनी है, तो पात्र पूरा भरना पड़ेगा। राजा हंस पड़ा। उसके राज्य की सीमाएं इतनी बड़ी थीं कि संभवतः उस समय किसी के राज्य की सीमाएं उतनी बड़ी नहीं थीं। उसकी तिजोरियों में इतना धन था कि उसकी कोई गणना न थी। उसके विजय की कथा बहुत बड़ी थी। वह हंस पड़ा और उसने अपने मंत्रियों को कहाः अब अन्न से भरना ठीक न होगा। जाओ, स्वर्ण-अशर्फियों से इसके पात्रा को भर दो। और इतना भर दो कि पात्र से बाहर भी स्वर्ण-अशर्फियां गिर जाएं।
कोई बात न थी। खेल था राजा के लिए यह सब। मंत्री गया, स्वर्ण-अशर्फियां भर कर लाया झोली में और भिक्षु के पात्रा में डाली। लेकिन भिक्षु के पात्र में स्वर्ण-अशर्फियां पड़ते ही राजा को पता चला, सौदा महंगा पड़ने का मालूम होता है। भिक्षु के पात्रा में पड़ी अशर्फियां कहीं खो गईं। पात्र खाली का खाली रहा। राजा के चेहरे पर घबड़ाहट आ गई, लेकिन हार मानने को कौन इतनी जल्दी राजी होता है। फिर वह राजा था, बहुत बड़ा विजेता था। उसके अहंकार की कोई सीमा न थी। उसने मंत्रियों को कहाः चाहे सारा राज हार जाऊं बा.जी पर, लेकिन इसके पात्र को तो भरना ही होगा। फिर दोपहर हो गई। भिक्षु का पात्रा खाली का खाली रहा, मंत्री भागते रहे। तिजोरियों से धन समाप्त होता चला गया। फिर सांझ हो गई और राजा के वे खजाने जिन्हें वह सोचता था, अकूत हैं, जिनकी कोई माप नहीं, उनकी भी सीमा आ गई। कोई खजाना इतना बड़ा नहीं होता कि उसकी सीमा न आ जाए। लेकिन भिक्षु का पात्र खाली था, खाली ही रहा।
सांझ राजा को लगा, हार मान जाने के सिवाय अब कोई मार्ग नहीं है। बड़ी पीड़ा की बात थी। जो बड़े सम्राटों के सामने नहीं हारा था, एक भिखारी के सामने हारना पड़ेगा क्या उसे!
सूरज ढलने को हो गया। सारे राजमहल में उदासी और दुख छा गया। कोई दीया
उस रात जलने को नहीं था, वहां। राजा भिक्षु के पैरों पर गिर पड़ा और कहा, मुझे माफ कर दें। आज मुझे ज्ञात हुआ कि भिक्षु का पात्र सम्राटों के राज्य से भी बड़ा है। भिखारी की भूख समृद्ध की तिजोरियों से बहुत बड़ी है। मैं नहीं भर सकूंगा इसे, माफ कर दें। सुबह अहंकार में मैंने जो कह दिया था, उसे मैं वापस लेता हूं। लेकिन जाने के पहले एक बात बताए जाएं। क्या रहस्य है इस पात्रा का। क्या जादू है इसमें, किन मंत्रों से यह सिद्ध किया गया है। भिक्षु बोला कोई मंत्र नहीं, कोई जादू नहीं। बड़ी सीधी सी, सरल सी बात है। मैं खुद चकित हुआ था इसे पहली बार देख कर। एक मरघट से निकलता था। वहां एक आदमी की खोपड़ी पड़ी मिल गई। उससे ही मैंने यह पात्रा बना लिया। लेकिन जब भी इसे भरा, तो पाया कि वह खाली रह जाता है। तब मुझे समझ में आया, मनुष्य का मन कभी नहीं भरता है। इसलिए यह खोपड़ी भी भरने को तैयार नहीं है।
कोई मंत्र नहीं, कोई जादू नहीं है। मनुष्य के मन का ही यह पात्रा है। मनुष्य का सारा विशाद, मनुष्य के इस भिक्षापात्र से पैदा होता है। मनुष्य की सारी चिंता और दुख, मनुष्य के जीवन की सारी उदासी और पीड़ा, मनुष्य के जीवन का सारा दुर्भाग्य, मनुष्य के मन के इस भिक्षापात्र में छिपा है। और हम निरंतर इसे भरने के श्रम में, निरंतर इसे भरने के संकल्प में, निरंतर इसे भरने की यात्रा में संलग्न रहते हैं। कौन, कब, मनुष्य अपने मन को भर पाया है?
मनुष्य-जाति का पूरा इतिहास, लम्बा इतिहास है। करोड़-करोड़ लोगों ने आकांक्षाएं की हैं मन को भर लेने की, लेकिन क्या कभी कोई सफल हो पाया है आज तक, क्या कोई अपवाद हो पाया है? क्या, कोई मनुष्य कह सका कि मैंने भर लिया अपने मन को? मैं तृप्त हूं, मैं संतुष्ट हूं, मैंने पा लिया, जो मैंने चाहा

था। अब मेरी कोई चाह नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, क्या कभी कोई कह पाया है? आज तक तो नहीं कोई कह पाया। लेकिन हर मनुष्य को यह भ्रम है कि मैं अपवाद सिद्ध हो जाऊं। मैं कह सकूं। हर मनुष्य को यह भ्रम हमेशा रहा है, हर मनुष्य को यह खयाल रहा है, न कर पाए होंगे दूसरे लोग तृप्त, लेकिन मैं कर लूंगा। मैं एक्सेप्शन, मैं अपवाद सिद्ध होने को हूं। और इस भ्रम में हर मनुष्य का जीवन चुक जाता है और मन खाली का खाली रह जाता है।
जिस मनुष्य का यह भ्रम टूट जाता है, उसके जीवन में धर्म की शुरुआत होती है। जिस मनुष्य का यह इलुजन, यह भ्रम बना रहता है, उसके जीवन में धर्म का कोई मार्ग कभी नहीं खुलता है। वह चाहे मंदिरों के द्वार खटखटाए, वह चाहे शास्त्रों को सिर पर ढोए, वह चाहे कुछ भी करे, पूजा और प्रार्थना। नहीं, वे पूजा और प्रार्थना, वे मंदिर और तीर्थों की यात्राएं भी उसके मन को न भर सकेंगी। जब तक उसे यह स्मरण न आ जाए कि मन कुछ ऐसा है कि वह भरा ही नहीं जा सकता। जब तक वह इस सत्य का साक्षात न कर ले कि मन स्वभावतः दुष्पूर है, उसे भरा नहीं जा सकता, उसे पूरा नहीं किया जा सकता।
सिकंदर मरा था, जिस राजधानी में, उसकी अरथी निकली, लोग हैरान हो गए। ऐसी अरथी कभी किसी ने न देखी थी। बड़ी अजीब बात थी। सिकंदर के दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके हुए थे। लोग सोचे, क्या कोई भूल हो गई है। लेकिन सिकंदर की अरथी भूल हो सकती थी क्या। कोई भिखारी न मर गया था, कि लोग उसे घसीटें और मरघट पर डाल आएं। सिकंदर की मृत्यु थी, वह कोई सामान्य मृत्यु न थी। क्यों हाथ बाहर लटके हुए थे। हर कोई यही पूछने लगा। सारे नगर में एक ही चर्चा थी, एक ही बात, सिकंदर के हाथ अरथी के बाहर क्यों लटके हुए हैं। सांझ होते-होते धीरे-धीरे खबर उठी, लोगों को पता चला, सिकंदर ने मरते वक्त कहा था। मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, ताकि हर आदमी देख ले, मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं हैं। पता नहीं, लेकिन इन खाली हाथों को देख कर सिकंदर का यह संदेश किसी तक पहुंचा या नहीं पहुंचा, क्योंकि सिकंदर को मरे बहुत वक्त हो गया। उसके खाली हाथ हजारों लोग, करोड़ों लोग देख चुके हैं, लेकिन वे भी अपने हाथ भरने की उसी कोशिश में संलग्न हैं। मालूम होता है, सिकंदर की अरथी के बाहर लटके हुए हाथ व्यर्थ चले गए, वे किसी को दिखाई नहीं पड़े। लोग शायद हंस लिए होंगे, लोग शायद सोचे होंगे कि सनकी था, जीवन भर सनक रही और यह अंत में सनक आई कि अपने हाथ बाहर लटका लिए। लेकिन हर आदमी ने सोचा होगा, तुम खाली गए तो क्या, मैं भरा होकर जाने को हूं। मेरे हाथ अरथी के भीतर होंगे और मुट्ठियां मेरी भरी होंगी।
शायद इसलिए हर मरते आदमी के हाथ हम अरथी के भीतर सम्हाल के रख देते हैं, ताकि कोई देख न ले कि उसकी मुट्ठी खाली है या भरी। लेकिन हम सब भलीभांति जानते हैं, कोई भी हाथ भरा हुआ नहीं जाता, न ही जा सकता है। शायद यह असंभावना है कि किसी के हाथ भर सकें। शायद यह संभव नहीं है। संभव न होने के पीछे कोई कारण होगा, कोई वजह होगी, कोई बुनियादी बात होगी। अन्यथा अब तक क्या हर आदमी असफल हो जाता। और एक ही श्रम और एक ही संकल्प है सबका, एक ही अभीप्सा, एक ही आकांक्षा करोड़-करोड़ जन जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं। और एक ही उनके प्राणों की उत्सुकता है कि किसी भांति उस भरेपन को पा लें, जिसके आगे कोई चाह न रह जाए। उस जगह पहुंच जाएं, जिसके आगे जाने को कोई मार्ग न रह जाए और वह मंजिल मिल जाए जो अंतिम हो, जिसके आगे फिर कोई यात्रा न करनी पड़े। लेकिन हर कदम नई यात्रा को खोल देता है। और हर आकांक्षा की तृप्ति नई आकांक्षाओं के आकाश के दर्शन कराती है। हर तृप्ति मिलते ही नई अतृप्तियों को खोलने की कुंजी मिल जाती है। और नई अतृप्तियों के द्वार खुल जाते हैं। और फिर वही दौड़। जन्म से लेकर मृत्यु तक। एक ही दौड़ और एक ही परिणाम। बड़े आश्चर्य की बात है। और फिर भी किसी को दिखाई न पड़ता हो। एक ही दौड़, एक ही परिणाम, एक ही असफलता, फिर भी किसी को दिखाई न पड़ता हो। तो शायद सोचना पड़े कि मनुष्य बड़ा अंधा है।
क्राइस्ट ने एक दिन लोगों से कहा थाः अगर तुम्हारे पास आंखें हों तो देखो। और अगर तुम्हारे पास कान हों, तो सुनो। किसी ने पूछाः क्या आप सोचते हैं हमारे पास कान और आंखें नहीं हैं। क्राइस्ट ने कहाः मैं सोचता नहीं, मैं देखता हूं कि नहीं है। काश! मनुष्य के पास आंखें होतीं, तो उन शक्तियों

को देख पाता, जो निरंतर मौजूद हैं, लेकिन फिर भी दिखाई नहीं पड़तीं। सबसे बड़ा सत्य, जो मनुष्य के पास रोज खड़ा है वह है, मनुष्य के मन की दुष्पूरता, मनुष्य के मन के न भरे जाने का सत्य। लेकिन नहीं उसे हम देखना नहीं चाहते हैं।
एक फकीर था। एक सुबह एक व्यक्ति ने आकर उससे कहाः मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं। सत्य के दर्शन करना चाहता हूं। क्या यह हो सकता है? किसी ने कहा है, आपके पास जाऊं। शायद आपका इशारा मुझे उस यात्रा पर गतिमान कर दें। उस फकीर ने कहाः हो सकता है मैं तो इशारा करूंगा, लेकिन तुम्हारे पास आंखें हैं कि तुम इशारे को देख सको? और जो जिंदगी के इशारे को नहीं देख पाया, मुझ गरीब फकीर के इशारे देख सकेगा क्या? फिर भी तुम आए हो, तो सम्राटों के द्वार से तो लोग खाली लौट जाते हैं, लेकिन फकीरों के द्वार से कब कौन खाली लौटता है। इसलिए चलो, मैं इशारा कर दूं, शायद तुम देख सको। और उसने उठाई एक बाल्टी और एक बड़ा ड्रम और कहा कि आओ मेरे साथ कुएं की तरफ। आदमी कुछ समझा नहीं कि कुएं पर जाने और परमात्मा के दर्शन में और सत्य
की खोज का क्या सम्बन्ध हो सकता है। लेकिन फिर भी धीरज रखना जरूरी था। उस फष्कीर ने रास्ते में कहाः अगर लौटते वक्त भी तुम कुएं से मेरे साथ रहे, तो शायद कुछ बात हो सके। उस आदमी ने सोचा, कैसा पागल है, लौटते वक्त मैं क्यों साथ न रहूंगा। जरूर रहूंगा। मैं खोज करने आया हूं। कुएं पर वह फकीर गया। फकीर ने ड्रम नीचे रखा, तो वह आदमी देख कर हैरान रह गया कि पागल मालूम पड़ता था। उस ड्रम में कोई बॉटम न थी, कोई तलहटी न थी। वह दोनों तरफ से पोला था। क्या इसमें यह पानी भरने को आया हुआ है। फिर उसने बाल्टी कुएं में डाली और पानी खींचा और उस ड्रम में डाला। पानी तो नीचे बह गया। उसने बाल्टी फिर कुएं में डाल दी। वह आदमी चकित खड़ा देखता रहा। उसने सोचा, मैं भी किस पागल आदमी के पास परमात्मा की खोज करने आ गया हूं। भूल हो गई। यह आदमी ठीक ही कहता था कि कुएं से अगर लौटते वक्त तुम मेरे साथ रहे, कौन इसके साथ रहेगा। मुझे घर चला जाना चाहिए। लेकिन जाने के पहले उचित है कि इस फकीर को चेता दूं कि यह क्या पागलपन करते हो, ऐसे पानी नहीं भरने वाला।
दूसरी बाल्टी तब तक फकीर डाल चुका था। वह भी बह गई थी, ड्रम खाली था। तीसरी बाल्टी भरी जाती थी। उस आदमी का धीरज टूट गया। उसने कंधे पर हाथ रखा और कहाः सुनो, पागल हो, देखते नहीं हो, उसमें कोई तलहटी नहीं है, कोई बॉटम नहीं है। उसमें कहीं पानी भरेगा। उस फकीर ने कहाः लो, तुम मुझसे सीखने आए थे और मुझे तुमने सिखाना शुरू कर दिया। अक्सर ऐसा होता है, शिष्य के नाम से जो लोग आते हैं बहुत जल्दी गुरु बन जाते हैं। अक्सर ऐसा होता है, अनुयायी के नाम से जो लोग पीछे आते हैं, बहुत जल्दी नेता के भी नेता बनने की कोशिश में लग जाते हैं। सारी दुनिया में अनुयायी नेताओं के नेता बन गए हैं। शिष्य गुरुओं के गुरु बन गए हैं। भक्त साधुओं के मालिक बन गए, अकारण थोड़े ही। कुछ वजह से।
उस फकीर ने कहाः क्षमा करो, यहीं नाता-रिश्ता तोड़ दो। तुम जाओ। वह आदमी बोलाः तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं, मैं खुद ही जाने को था लेकिन जाते वक्त चेता देना जरूरी है कि मर जाओ तुम भर-भर कर, यह कुआं खाली हो जाए, लेकिन यह ड्रम नहीं भरेगा। उस फकीर ने कहाः तुम बड़े पागल मालूम पड़ते हो। ड्रम क्यों नहीं भरेगा, जब मैं भरने की कोशिश कर रहा हूं, तो जरूर भरेगा। आखिर भरने की कोशिश से चीजें भरती हैं, मैं भरने की कोशिश कर रहा हूं, पूरे प्राणधन से कोशिश कर रहा हूं, पूरी ताकत लगा रहा हूं, फिर क्यों नहीं भरेगा। उस आदमी ने कहाः सिर्फ कोशिश काफी नहीं है, यह भी देख लेना जरूरी है; जिसमें तुम भर रहे हो वह भरा भी जा सकता है या नहीं। उसमें तलहटी नहीं है।
वह फकीर बोलाः मुझे तलहटी से क्या लेना-देना? मुझे तलहटी से क्या संबंध? मैं ड्रम को भरना चाहता हूं, तो उसके ऊपर के किनारे पर अपनी आंखें लगाए हुए हूं कि जब वह ऊपर तक भर जाएगा, उठा कर घर चला जाऊंगा, नीचे देखने से मुझे प्रयोजन? मैं ऊपर देख रहा हूं, जहां पानी आना चाहिए। फकीर की ये बातें सुन कर उस आदमी ने हाथ जोड़े और कहाः माफ करो, भूल से मैं आ गया। मेरे गांव के और लोग भी तुम्हारे पास आना चाहते थे, उनको जाकर चेता दूंगा।

वह आदमी वापस लौट गया। लेकिन रात उसने सोचा, इतनी सीधी सी बात भी क्या
उस फकीर को दिखाई नहीं पड़ती थी कि जिस बर्तन में वह पानी भर रहा है, उसमें कोई तलहटी नहीं है। उसमें कोई पेंदी नहीं है, उसमें पानी नहीं भरा जा सकता। क्या उसे यह सीधी सी बात दिखाई नहीं पड़ती थी! जरूर उसे भी दिखाई तो पड़ती होगी। तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस घटना से उसने मुझसे कुछ कहना चाहा हो? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि मैं जल्दी वापस लौट आया? क्या उचित न हुआ होता कि मैं उसके साथ लौटते में भी चला जाता? हर्ज क्या था?
वह रात को उठा और फकीर के घर पहुंच गया। सोते से फकीर को जगाया और कहा: मुझे माफ कर दें। मैंने जल्दी की। शायद आप मुझे कोई शिक्षा देना चाहते थे, जो मैं नहीं समझ सका। शायद मैं आपके इशारे को नहीं पहचान पाया, मैं पूछने आया हूं।
वह फकीर खुश हुआ। उसने कहाः मुश्किल से कभी कोई आता है। यह तो मेरी रोज की परीक्षा है। जब भी कोई परमात्मा को खोजने आता है, तो पहले मैं कुएं पर ले जाता हूं, लेकिन तुम लौट के आए, तुम पहले आदमी हो। मैं भी तुमसे यही पूछना चाहता हूं कि जिस मन को तुम भरना चाहते हो, उसमें कोई तलहटी है? कोई बॉटम है? कभी खोजा मन के पात्रा को कि भीतर कोई उसमें जगह है जहां चीजें रुक जाएं। लेकिन तुम भी ऊपर की तरफ आंखें लगाए हो कि मन भर जाए, लेकिन यह देखते नहीं कि भीतर मन को भरने के लिए कोई स्थान है, रोकने के लिए कोई जगह है, कोई बॉटम है। तुम भी यही देख रहे हो कि मैं मेहनत कर रहा हूं, तो मन भर जाएगा। बिना इस बात को देखे हुए कि हो सकता है, मन का पात्रा पोला हो। तो इसके पहले कि कोई समझदार आदमी जीवन को आनंद से भरने निकले, वह मन के पात्रा की खोज कर लेता है। तो मेरे मित्र कुएं पर मैंने तुम्हें इशारा किया था। इशारा तो तुम नहीं समझे, उलटे मुझे शिक्षा देने लगे। लेकिन ठीक है कि तुम वापस लौट आए हो। अब आगे कुछ बात हो सकती है।
वह आदमी उस फकीर के पास सदा के लिए रुक गया। और वह आदमी जिस दिन मरा उस दिन वह गांव के लोगों से कह सका, मेरे हाथ खाली नहीं हैं। आज तक जमीन पर कुछ थोड़े से लोग, जिन्होंने मन को समझा है, यह कह सके हैं कि हमारे हाथ खाली नहीं हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उनके हाथ भर गए। इसका यह अर्थ है कि जैसे ही उन्होंने हाथों को भरने की इस सारी दौड़ को समझा, उन्होंने भीतर देखा तो पाया, इस दौड़ के कारण, भीतर जहां कि वे सदा ही भरे हुए थे, इस दौड़ के कारण इस भरे हुए को नहीं देख पाते थे। इस दौड़ में उलझे रहते थे। और भीतर की संपदा, भीतर के साम्राज्य का कोई अंत होने को न था। यह दौड़ में जीवन चुक जाता था। भरने की कोशिश में, और वे यह जान ही नहीं पाते थे कि इस कोशिश के पीछे जो खड़ा है, वह निरंतर भरा हुआ है कि उसे भरने की कोई जरूरत नहीं। वह जो निरंतर भरा ही हुआ है हमारे भीतर, उसका ही नाम आत्मा है। और जो हमारे भीतर निरंतर खाली है, उसका नाम मन है।
दो तरह की दौड़ें हैं। एक मन की दौड़ है और दो ही तरह के मनुष्य हैं। मन
के पीछे यात्रा करते हुए लोग और मन की यात्रा की व्यर्थता को जान कर, स्वयं में ठहर गए हुए लोग। जो स्वयं में ठहर जाता है, वह भर जाता है। और जो मन के पीछे दौड़ता है, वह निरंतर खाली से खाली होता चला जाता है। आखिर में यह खालीपन इतना घबड़ा देता है, यह एंप्टीनेस इतना घबड़ा देती है, यह निरंतर भीतर कुछ भी नहीं कर पाता, सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है। इतना फ्रस्ट्रेशन, इतनी पीड़ा इससे पैदा होती है, इतनी विफलता का विषाद पैदा होता है कि उस क्षण अगर किसी मनुष्य को लगता हो कि मैं अपने को समाप्त ही कर लूं, तो कोई आश्चर्य की बात तो नहीं है। कोई आश्चर्य की बात तो नहीं है कि कोई देख ले कि सब व्यर्थ हो गया है, तो जीऊं किसलिए! और एक दिन सारा जीवन ही राख मालूम पड़ने लगे। उसमें सब ज्योति बुझ जाए। कोई भी अपने को समाप्त कर लेने के ख़याल से भर सकता है।
आप में भी यहां शायद ऐसा कोई व्यक्ति हो, जिसने जिंदगी में कई बार खुद
को खत्म कर लेने के खयाल का अनुभव न किया हो। कई बार जिसे ऐसा न लगा हो कि सब व्यर्थ है। इसमें क्या करूं? इसमें आगे जाने में कौन सी सार्थकता है? ऐसा विचारशील मनुष्य खोजना कठिन है, जिसके मन में आत्मघात का खयाल कभी न कभी न आ गया हो। सिर्फ दो तरह के लोगों में आत्मघात का खयाल नहीं आता। एक

तो वे, जो नितांत जड़ बुद्धि हैं, जिनकी बुद्धि में कुछ भी नहीं आता। और एक वे, जिनके जीवन में आत्मा का आलोक प्रकाशित हो जाता है। बीच के तो सारे लोगों के मनों में आत्मघात के खयाल का आ जाना विचारशीलता का लक्षण है। स्वभावतः आ जाएगी यह बात, कि क्या, अगर जीवन एक व्यर्थ का खेल है, अगर
हम ताश के पत्तों का घर बनाएं, पैदा हो जाएगा। और इस तथ्य को बिना देखे आदमी जीवन की चिकित्सा करने की कोशिश करता है, निदान करता है। उसके सारे निदान भ्रांत सिद्ध होते हैं। और बीमारी से भी ज्यादा औषधियां खतरनाक सिद्ध होती हैं।
पांच हजार वर्षों से हजारों निदान प्रस्तुत किए गए, हजारों चिकित्साएं बताई गईं। यह करो, उपवास करो, प्रार्थना करो, सिर के बल खड़े हो जाओ, कपड़े छोड़ दो, नंगे हो जाओ, घर छोड़ दो, भाग जाओ, हजार-हजार उपाय बताए गए हैं कि यह करो इनके करने से सब ठीक हो जाएगा। लेकिन बुनियादी बात पर जिसका खयाल नहीं है, वह कुछ भी करे, किसी भी बात से कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि मन रहेगा मौजूद। आज दो उपवास करेंगे, मन कहेगा, इससे तो कुछ भी नहीं हुआ, कल तीन करें। कल तीन करेंगे और पाएंगे, इससे तो कुछ भी नहीं हुआ, कल सात करें। कल सात करेंगे, मन कहेगा, सात। इससे तो कुछ भी नहीं हुआ, कल पंद्रह करें। वह वही दौड़ है, एक लाख रुपये हैं, तो मन कहता है कि कुछ भी नहीं हुआ, दो लाख चाहिए। दो लाख होते हैं, तो कहता है, तीन लाख चाहिए। चार लाख चाहिए, वह कहता ही चला जाता है, एक उपवास करो, दो उपवास करो, तीन करो, वह कहता ही चला जाता है। इससे भी कुछ नहीं हुआ, आगे शायद कुछ होगा। दौड़ वही है, चाहे उपवास करो, चाहे रुपये इकट्ठा करो। मन वही है, उस मन में कोई फर्क नहीं पड़ा।
एक आदमी एक भवन बनाता चला जाए। एक मंजिल बनाता है, मन कहता, इससे कुछ
भी नहीं हुआ, दूसरी मंजिल बनाओ, तीसरी मंजिल बनाओ, बनाते चले जाओ। आकाश छू लो, तब भी मन कहेगा कि कुछ नहीं हुआ। एक आदमी धन इकट्ठा करना शुरू करता है, तो मन कहता है और, और चाहिए और चाहिए तब कुछ होगा। एक आदमी त्याग करना शुरू करता है, तो मन कहता है और छोड़ो, और छोड़ो, और त्याग करो, तब कुछ होगा। लेकिन और की भाषा कायम रहती है। और की भाषा का नाम मन है। और चाहिए, चाहे छोड़ो, चाहे पाओ। लेकिन मन कहता है और करो। इससे कम पर राजी नहीं होता। उतने पर पहुंच जाते ही मन आगे फिर खड़ा हो जाता है और कहता है और करो।
न कोई त्यागी तृप्त होता है और न कोई भोगी। चूंकि दोनों के पीछे मन की यात्रा कायम रहती है। इसलिए ह.जारों साल से प्रस्तावित निदान व्यर्थ हो गए हैं। हजारों साल से बताई गई चिकित्साएं सार्थक नहीं हुईं। आदमी वहीं का वहीं खड़ा है।
मैंने सुना है, न्यूयॉर्क के एक स्कूल में, एक छोटे से बाल मंदिर में,
एक बच्चे के सम्बन्ध में वहां के शिक्षक बहुत चिंतित हो गए। बच्चे में कुछ ऐसे लक्षण दिखाई पड़ रहे थे कि चिन्ता स्वाभाविक थी। वैसे लक्षण बूढ़े में दिखाई पड़ें, तो कोई चिंता नहीं करता, क्योंकि वह अब जाने को है। उसके बाबत चिंता की जरूरत नहीं। लेकिन बच्चा तो अभी आने को है जगत में। और वह कुछ बूढ़ों जैसे लक्षण दिखाने लगा था। लक्षण की खबर इसलिए मिली थी कि उस बच्चे में इधर पंद्रह दिनों से देखा गया था कि वह कोई भी चित्र बनाता था, तो काले रंग से बनाता था। फूल बनाता तो काले रंग का, गाय बनाता तो काले रंग की, लड़का बनाता तो काले रंग का। सभी कुछ काले रंग का बनाता था।
उसके शिक्षक को खयाल गया इस बात पर। बात क्या है, काले रंग का इतना आग्रह इसमें क्यों है? काला रंग तो मौत का सबूत है, जिंदगी का नहीं। काले रंग का इतना प्रेम तो उदासी की खबर है, दुख की खबर है, चिंता की खबर है, प्रफुल्लता की तो नहीं, आनंद की तो नहीं।
और एक दिन तो हद हो गई, वह लड़का एक चित्रा बना कर लाया था, जो पूरा का पूरा काला था, जिसमें पहचानना मुश्किल था, क्या बनाया है। उसके शिक्षक ने पूछा कि यह क्या है। उस बच्चे ने कहाः देखते नहीं हैं, यह काला समुद्र है। यह काली नाव, यह काला आदमी बैठा हुआ है। ये काले दरख्त लगे हुए हैं। यह काला सूरज निकला हुआ है, ये काले फूल लगे हुए हैं। देखते नहीं ये काले पहाड़ हैं, काली बदलियां हैं, सब-कुछ काला था। पहचानना बहुत मुश्किल था।

उसके शिक्षक ने सोचा कि यह खबर मनोवैज्ञानिक को कर देनी उचित है। इस बच्चे की जिंदगी के भीतर कुछ गड़बड़ हो गई है। इसका इलाज होना जरूरी है। मनोवैज्ञानिक बुला लिया गया। उस मनोवैज्ञानिक ने पंद्रह दिन खोज-बीन की। पंद्रह दिन की, यही बहुत कम है। हिंदुस्तान का मनोवैज्ञानिक होता और कोई कमीशन बैठता, तो पंद्रह साल करते। फिर पंद्रह दिन थोड़ा ही वक्त लिया, कोई ज्यादा वक्त नहीं लिया। फिर विशेषज्ञ जितना ज्यादा वक्त ले, उतना ही थोड़ा है। बड़े-बड़े ग्रंथों के उद्धरण देकर उसने सिद्ध किया कि बच्चे की क्या- क्या तकलीफें हैं। बच्चे के जन्म से लेकर अब तक का उसने सारा इतिहास लिखा। बच्चे के मां-बाप आपस में लड़ते हैं, इसलिए बच्चा उदास है। उसके परिवार की स्थितियां अच्छी नहीं हैं। आर्थिक स्थितियां बुरी हैं। पड़ोस गंदा है। सारी बातें उसने लिखी। मनोविज्ञान के जितने भी दुख के कारण हो सकते थे, सबका ब्यौरा लिखा। वह रिपोर्ट आई।
रिपोर्ट आई, स्कूल का जो चपरासी था, वह भी हैरान था कि बच्चे की इस इतनी सी बात के लिए इतना बड़ा तूफान किया जा रहा है। इतना अध्ययन किया जा रहा है। उसने उस बच्चे को एकांत में पकड़ा और पूछाः बेटे तुम मुझे तो बताओ कि तुम काले रंग से चित्रा क्यों बनाते हो। उस बच्चे ने कहाः असल बात यह है कि मेरी डब्बी के और सारे रंग खो गए हैं। सिर्फ काला रंग बचा हुआ है। उस बूढ़े चपरासी ने दूसरे रंग लाकर उसे दे दिए। दूसरे दिन से उसने काले चित्र बनाने बंद कर दिए। फिर वह लाल फूल बनाने लगा और पीला सूरज उगाने लगा।
एक बुनियादी बात जो किसी ने भी उससे नहीं पूछी। सब उसके अध्ययन में लग गए। लेकिन उससे किसी ने भी सीधा नहीं पूछा कि बात क्या है।
आदमी की चिकित्सा भी इसी तरह की चल रही है और बहुत बड़े-बड़े विशेषज्ञों
के हाथ में आदमियों की जान बड़ी मुश्किल में पड़ गई है। बड़े-बड़े धर्मज्ञों ने, धर्म पुरोहितों ने, धर्म पुरोहितों के भी अलग-अलग संप्रदाय हैं, हिंदू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं, ईसाई हैं और न मालूम कितने तरह के रोग हैं सारी दुनिया में। और उन सबने इतने उपचार उपस्थित कर दिए हैं आदमी के साथ कि यह करो, यह करो! और उनके उद्धरण हैं। उनके ग्रंथ हैं समर्थन में कि यह करने से यह होगा और वह करने से वह होगा। क्या आदमी बहुत विधृत खड़ा होकर रह गया है कि क्या करे और क्या न करे। और शायद कुल जमा बात इतनी है कि मनुष्य के मन को सीधा देखने की बात हम सब में से सभी भूल गए हैं। वह मन सीधा देखा जाना चाहिए कि जिसकी सब दौड़ दुख में ले जाती है। उस मन के साथ अभी कुछ करने का सवाल उतना बड़ा नहीं है, क्योंकि बिना मन को जाने, जो कुछ भी किया जाएगा, उसका परिणाम गलत होना निश्चित है, चाहे दुकान चलाई जाए और चाहे प्रार्थना की जाए।
मन को बिना जाने जो कुछ भी किया जाएगा, उसका परिणाम खतरनाक होने वाला है, क्योंकि मन को बिना जाने, मन को बिना पहचाने किए गए कृत्य समाधान पर ले जाने वाले नहीं हो सकते। लेकिन हम सब यही पूछते फिरते हैं। हम जाकर किसी को पूछते हैं, मन अशांत है, क्या करें? तो वह कहता है, माला जपो। अशांत आदमी अगर माला भी जपेगा, तो अशांत आदमी ही तो माला जपेगा न। और अशांत आदमी की माला जपने का क्या मूल्य हो सकता है। कोई उसे कह देता है, जाकर उपवास करो, वह अशांत आदमी उपवास कर लेता है, वह और अशांत हो जाता है, और क्रोधी हो जाता है। जानते हैं भलीभांति हम धार्मिक लोगों को, उनका क्रोध और बढ़ता चला जाता है। जिस-जिस मात्रा में धर्म बढ़ता है, उस-उस मात्रा में क्रोध बढ़ता है।
हर आदमी, हर घर में हर आदमी पहचानता है कि अगर कोई आदमी धार्मिक हो रहा
है, तो उसका बढ़ता क्रोध इसकी खबर देता है कि वह आदमी धार्मिक होता चला जा रहा है। इसने पूजा शुरू कर दी, इसने मंदिर जाना शुरू कर दिया, यह धर्मशास्त्र पढ़ने लगा है। उसका कोई कसूर नहीं है, कसूर है चिकित्सकों का। जो बिना इस बात की फिकर किए कि यह आदमी अशांत हुआ है, तो अशांत होने वाले मन में झांकने के लिए उपाय हो, अशांत आदमी को कहते हैं कि यह करो, वह करो। अशांत आदमी जो भी करेगा उससे अशांति और भी बढ़ जाएगी। सबसे अच्छा तो यह होगा कि अशांत आदमी अगर कुछ भी न करे, कोने में बैठ जाए, तो भी शायद कुछ हो सकता है।

नादिरशाह अपनी विजय यात्राओं पर था। एक गांव में ठहरा और उसने सुन रखा था कि एक बहुत बड़ा चिकित्सक, एक बहुत बड़ा ज्योतिषी उस गांव में है। उसने उसे बुलवाया। नादिर को बहुत नींद आती थी। बहुत सोता था। उसने उस चिकित्सक को पूछा कि लोग कहते हैं कि आप बहुत सोते हैं, यह बुरी बात है। इसकी वजह से आपको सब तकलीफें होती हैं। क्या मैं कम सोना शुरू कर दूं? लोग मुझे ग्रंथ लाकर बताते हैं कि कम सोना अच्छा है, ज्यादा सोना बुरा, क्या मैं कम सोऊं। उस ज्योतिषी और चिकित्सक ने, जो अदभुत रहा होगा, कहाः नहीं महानुभाव, आप चौबीस घंटे सोएं तो बहुत अच्छा। आपका जागना बहुत खतरनाक है। आप जैसे खतरनाक आदमी जितनी देर सोए रहें, उतना अच्छा है। अगर आप चौबीस घंटे सोए रहें, तो बहुत अच्छा। आप जितनी देर जागेंगे, उतना ही ज्यादा उपद्रव जगत में होगा। नादिरशाह ने उसको मरवा डाला।
सच्ची बातें आदमी कभी भी नहीं सुन सका है। सच्ची बात कहने का एक ही पुरस्कार हो सकता है कि जिसके लिए आप कहने गए थे, वह ही आप को मार डाले। लेकिन उस चिकित्सक ने बात तो बड़ी अदभुत कही थी। उसने कहाः ग्रंथों को एक तरफ रख दो। अच्छे आदमी का जागना अच्छा होता है, बुरे आदमी का सोना। ग्रंथों का सवाल नहीं है।
तो अशांत आदमी पूछता फिरता है, मैं क्या करूं कि मैं शांत हो जाऊं? और
जो भी उससे कहता है, तुम यह करो, वह गलत सलाह दे रहा है, क्योंकि अशांत आदमी जो भी करेगा, उसे करने से अशांति और बढ़ जाने वाली है। अशांत आदमी को, अशांत मन को करने का सवाल नहीं है, जानने का सवाल है। करना और जानना दोनों बड़ी बुनियादी, अलग बातें हैं। अशांत मन क्यों है? इस तथ्य का पूरा साक्षात होना जरूरी है। इसके भीतर प्रवेश होना जरूरी है, इसका पूरा का पूरा ज्ञान होना जरूरी है, इस पर आंखें ले जानी जरूरी है कि अशांत क्यों हूं मैं, क्यों हूं पीड़ित, क्यों हूं चिंतित, क्यों हूं दुख से भरा हुआ।
भीतर की तरफ एक यात्रा जरूरी है मन को जानने के लिए। लेकिन अगर कभी आप भीतर की तरफ उत्सुक भी होते हैं, तो आत्मा को जानने के लिए उत्सुक होते हैं, जो बिल्कुल गलत बात है। मन को जाने बिना कोई कभी आत्मा को नहीं जान सकता है।
तो अगर आप उत्सुक भी होते हैं भीतर के लिए, तो इसलिए कि भीतर आत्मा है क्या। नहीं, आत्मा की बात भी करनी ठीक नहीं। अभी तो सवाल मन का है, जिसका मन बिल्कुल शांत हो जाता है, जिसके मन की दौड़ चली जाती है, तभी और तभी उसे उसका अनुभव हो सकता है, जो आत्मा है। उसके पहले आत्मा की सारी बातचीत बकवास है। उसके पहले आत्मा की बातचीत व्यर्थ है। उसके पहले आत्मा की बातचीत में भटकने वाला तरकीबें खोज रहा है इस मन से बचने की, जो उसे परेशान किए हुए है; और इसकी परेशानी से भागा नहीं जा सकता। इसकी परेशानी को जानना होगा, पहचानना होगा। और हम सब तो अपने आप से भागते हैं, अपने आप को कोई भी जानना नहीं चाहता। हम बातें जरूर करते हैं कि हम आत्मा को जानना चाहते हैं। आत्मा को जानना चाहते हैं, लेकिन अपने को नहीं। आत्मा शब्द से कुछ पता नहीं चलता।
आप हैं असली, आत्मा नहीं, आप! और आप क्या हैं? क्रोध हैं, हिंसा हैं, वैमनस्य हैं, द्वेष हैं, घृणा हैं, यह सब हैं आप। इसको नहीं जानना चाहते, आत्मा को जानना चाहते हैं, अमृत आत्मा को, जिसकी मृत्यु नहीं होती। ऐसी आत्मा को जिसमें आनंद ही आनंद है। ऐसी आत्मा को जहां कोई भय नहीं है। ऐसी आत्मा को जानना चाहते हैं, लेकिन अपने को नहीं। और जो अपने को नहीं जानता, वह आत्मा को कैसे जान सकेगा। और मैं यह कह रहा हूं, ये दोनों बातें बहुत अलग हैं। अपने को जानना अलग बात है, आत्मा को जानना बिल्कुल अलग।
जो अपने को जान लेता है, वह आत्मा को जानने का द्वार खोलता है। अपने से मेरा मतलब है ठोस व्यक्ति, जो मैं हूं। लेकिन ठोस व्यक्ति से हम बिल्कुल परिचित नहीं होना चाहते। बल्कि हम उस ठोस व्यक्ति को छिपाते हैं अच्छे- अच्छे वस्त्रों में कि न तो हम उसे जान पाएं, न दूसरा उसे जान पाए। जो आदमी हिंसक होता है, वह अपनी हिंसा को नहीं जानना चाहता। वह यही दिखलाना चाहता है कि मैं अहिंसक हूं।

तो अहिंसक होने के लिए वह कोई सस्ती तरकीबें खोज लेता है। वह पानी छान
कर पीता है, रात को खाना बंद कर देता है। ये बहुत ही सस्ती तरकीबें हैं। अहिंसा इतनी सस्ती बात नहीं। धर्म इतना सस्ता नहीं है, धर्म बहुत महंगा है। वह दिन में पानी छान कर पी लेता है। रात खाना नहीं खाता। वह कहता है, मैं अहिंसक हूं। बहुत होशियार आदमी है, सारी हिंसा को उसने भीतर छिपा लिया इस सस्ती अहिंसा में। भीतर है घृणा, लेकिन वह कहता है, मैं बहुत प्रेम से भरा हुआ हूं। वह प्रेम की बातें करता है, भीतर की घृणा को छिपाता है। अपनी पत्नी को वह कहता है, मैं तुझे प्रेम करता हूं। और अगर वह एक बार गौर से देखे, तो उसे पता चलेगा, ये शब्द निहायत झूठे हैं। अपने बेटों से वह कहता है, अपने बच्चों से, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। और अगर वह.गौर से देखे, तो उसे पता चलेगा, ये शब्द सिर्फ किसी फिल्म से सुने गए, सीखे गए हैं। ये शब्द सच्चे नहीं हैं।
अगर बाप अपने बेटों को प्रेम करते हैं, भाई अपने भाइयों को प्रेम करते हैं, मां अपने बच्चों को प्रेम करती है, पति पत्नी को, पत्नी पति को प्रेम करती है, तो सारी दुनिया में इतना प्रेम है, तो फिर हिंसा कहां से आती है, घृणा कहां से आती है, क्रोध कहां से आता है? युद्ध कहां से पैदा होते हैं? जब हर आदमी प्रेम कर रहा है; क्योंकि हर आदमी किसी का भाई है, किसी का पति है, किसी का बाप है, किसी का बेटा है; जब हर आदमी प्रेम कर रहा है हजार-हजार रास्तों से, तो दुनिया तो प्रेम से भर जानी चाहिए! साढ़े तीन अरब लोग हैं जमीन पर। कितना प्रेम होता जमीन पर अगर ये सबकी बातें सच होतीं। इस साढ़े तीन अरब का हजार-हजार गुना प्रेम हो जाता, क्योंकि एक-एक आदमी हजारों नाते- रिश्तों से बंधा है। जिनसे वह कह रहा है कि मैं तुम्हें प्रेम कर रहा हूं। साढ़े तीन अरब हैं, इसमें हम कितना गुना कर देते प्रेम का, दुनिया एक प्रेम का सागर हो जाती, लेकिन नहीं, सच्चाई उलटी है। दुनिया घृणा का एक सागर है। पिछले तीन ह.जार वर्षों में चौदह हजार युद्ध हुए। चौदह ह.जार युद्ध तीन हजार वर्षों में! यह आदमी प्रेम करता है? चौबीस घंटे कलह और संघर्ष है और यह आदमी प्रेम करता है? निश्चित ही एक बात तय है, यह प्रेम की बातें करता है, प्रेम नहीं करता, क्योंकि प्रेम अगर यह करता, तो दुनिया बिल्कुल दूसरी होती। पूरी दुनिया तो गवाह है इस बात की कि दुनिया घृणा का सबूत है, हिंसा का सबूत है, प्रेम का सबूत नहीं है। कौन बना रहा है इस दुनिया को? मैं और आप। मैं भी प्रेम करता हूं, आप भी प्रेम करते हैं, फिर यह घृणा कहां से आ रही है? हिंसा कहां से आ रही है? कौन युद्ध में मर रहा है और मार रहा है? कौन हत्या कर रहा है, कौन हत्या की तैयारियां करवा रहा है?
नहीं, यह बात सच नहीं हो सकती। यह बात निहायत झूठी है कि हम प्रेम करते हैं। लेकिन हम प्रेम की बातें जरूर करते हैं। और हम जितने सभ्य होते जाते हैं, हमारी बातें उतनी ही सुंदर होती चली जाती हैं। और जितनी हमारी बातें सुंदर होती चली जाती हैं, उतनी हम यह बात भूलते चले जाते हैं कि भीतर बहुत कुरूप व्यक्ति छिपा हुआ है, सुंदर बातों के पीछे, सुंदर वस्त्रों के पीछे हमने बहुत नंगे और कुरूप आदमी को छिपा रखा है।
वह है ठोस व्यक्ति उसको जानना है, आत्मा वगैरह को नहीं। वह जो ठोस आदमी है भीतर, जो सब तरफ से झूठ से घिरा हुआ है, जिसने सब झूठे अभिनय ओढ़ रखे हैं, जिसने सब भांति के वस्त्रों में अपने को सब तरह से छिपा लिया है और सुरक्षित कर लिया है, और बड़ा कठिन और बड़ा मजा तो यह है कि जब एक आदमी दूसरों को धोखा देने के लिए झूठे वस्त्र ओढ़ लेता है, तो धीरे-धीरे वह खुद भी उन वस्त्रों के धोखे में आ जाता है।
अमेरिका में जिस आदमी ने सबसे पहला बैंक खोला। जब वह सौ वर्ष का हो गया, वह आदमी सौ वर्ष का होके मरा, तो उसकी सौवीं जन्म-तिथि पर बहुत बड़ा जलसा मनाया गया। और उससे किसी ने पूछा कि आप अमरीका के पहले बैंक के बनाने वाले हैं, क्या आप बताएंगे कि आपने अपने बैंक की शुरुआत कैसे की? तो उस आदमी ने कहाः यह आप न पूछो तो अच्छा है। बैंक की मैंने शुरुआत की बड़ी अजीब तरह से। मैंने एक पेटी रख ली और दरवाजे पर "यहां बैंक है" इसकी तख्ती लगा दी। और खाते-बहियां लेकर मैं बैठ गया कि शायद कोई आदमी रुपया जमा करवाए बैंक में। मुझे विश्वास नहीं था कि कोई करवाएगा। लेकिन घंटे भर बाद एक

आदमी आया और डेढ़ सौ रुपये जमा करवा दिए। फिर घंटे भर बाद एक आदमी आया उसने भी दो सौ रुपये जमा करवाए, तब तक मेरी हिम्मत इतनी बढ़ गई कि मेरे पास जो पचास रुपये थे, वे भी मैंने बैंक में जमा करवा दिए। तब तक विश्वास बढ़ गया। कांफिडेंस आ गया कि हां यह चलेगा काम। अभी तक मैंने अपने पचास रुपये जमा नहीं किए थे। अभी मैं देख रहा था, दो-चार लोग जमा करें, तो मैं भी हिम्मत करूं। बैंक मेरा ही था। फिर तो काम चल पड़ा।
लेकिन उसने बात बड़ी सच्ची कही। हम पहले चारों तरफ देख लेते हैं कि लोग विश्वास कर रहे हैं क्या, जो बात मैं कह रहा हूं, और अगर लोगों में दिखाई पड़ता है, वे लोग विश्वास कर रहे हैं, तो हम भी विश्वास कर लेते हैं कि बात सच्ची होनी चाहिए।
मैंने दो-चार लोगों से कहाः मैं तुमको बहुत प्रेम करता हूं, और उनकी आंखों में मुझे झलक दिखाई पड़ी, उन्होंने विश्वास किया। फिर धीरे-धीरे मैं भी विश्वास कर लेता हूं कि मैं प्रेम करता हूं।
और भीतर की जो घृणा थी, वह इस झूठे विश्वास में छिप गई। हमने भीतर इस तरह एक असली जो आदमी है हमारा, उसे छिपा रखा है, एक नकली आदमी को चारों तरफ से गढ़ लिया है। यह धोखा बहुत गहरा है, जिस व्यक्ति को भी जीवन के सत्य को जानना है, उसे इस धोखे को उघाड़ना पड़ेगा। यह बात बड़ी तपश्चर्यापूर्ण है, यह बहुत आरडुअस है कि हम इसको उघाड़ें और देखें। दूसरे को तो उघाड़ना बहुत आनंदपूर्ण है, लेकिन खुद को उघाड़ना उतना ही कष्टपूर्ण है। हम सब दूसरों को निरंतर उघाड़ते रहते हैं। निंदा करते हैं, सुबह से शाम तक चर्चा करते हैं कि फलां आदमी बुरा है, फलां आदमी ऐसा है, फलां आदमी वैसा है।
नीचे से लेकर ऊपर तक, असाधु से लेकर साधु तक निरंतर चर्चा कर रहा है कि कौन आदमी को किस तरह उघाड़ कर देख ले। किस आदमी की दीवाल के छेद में से झांक कर देख ले कि भीतर क्या हो रहा है। पड़ोसी के छप्पर में से देख ले कि पड़ोसी क्या कर रहा है। हर आदमी एक-दूसरे में झांकने की कोशिश में लगा हुआ है। लेकिन बहुत विरल हैं वे लोग जो अपने छप्पर को उघाड़ते हैं और अपनी दीवाल के छेद में से देखने की कोशिश करते हैं कि मेरे भीतर क्या हो रहा है।
एक स्कूल में एक सुबह ही सुबह एक इंस्पेक्टर निरीक्षण के लिए पहुंचा।
वह जैसे ही स्कूल में पहुंचा, उसने पहली कक्षा में प्रवेश किया। और उसने कहा कि इस कक्षा में जो तीन बच्चे सबसे ज्यादा होशियार हों, सबसे ज्यादा मेधावी व चुस्त हों, पहला लड़का जो सबसे ज्यादा होशियार हो वह आगे आए और तख्ते पर जो मैंने सवाल लिखा है उसको हल करे। एक लड़का उठा और धीरे से आकर उसने तख्ते पर सवाल हल किया और अपनी जगह बैठ गया। फिर दूसरा लड़का उठा, उसने भी जो सवाल दिया गया था, हल किया और अपनी जगह बैठ गया। फिर तीसरा लड़का उठा, वह कुछ झिझका और आने में कुछ डरा। लेकिन आया और तख़्ते पर सवाल हल करने लगा, तो इंस्पेक्टर ने उसे गौर से देखा, तो पाया कि यह तो पहले ही वाला लड़का है, जो पहली दफा आकर हल कर गया था।
उसने उसे रोकाः क्यों तुम धोखा दे रहे हो? तुम तो पहले ही सवाल हल कर चुके हो। तीसरा लड़का कहां है तुम्हारी कक्षा का, उस लड़के ने कहाः माफ करें तीसरा लड़का तो सुबह से क्रिकेट का खेल देखने चला गया है। और मुझसे कह गया है कि उसकी जगह कोई भी काम आए तो मैं कर दूं। इंस्पेक्टर आगबबूला हो गया। उसने कहाः हद हो गई। परीक्षाएं भी कोई किसी की जगह दे सकता है। धोखे की सीमा टूट गई। तुम दूसरे ही जगह परीक्षा दे रहे हो। यह बर्दाश्त के बाहर है। क्या नाम है तुम्हारा।
लड़का कंपने लगा, घबड़ा गया और शिक्षक की तरफ मुड़ा। वह इंस्पेक्टर, उसने कहा कि तुम खड़े हुए देख रहे हो। तुम्हें कहना चाहिए था, यह लड़का धोखा दे रहा है, तुम भी धोखे में सम्मिलित मालूम होते हो। उस शिक्षक ने कहाः माफ करें, मैं इस क्लास के लड़कों को पहचानता नहीं हूं। इंस्पेक्टर बोला: हद हो गई, तो तुम यहां किसलिए खड़े हो? तुम इस क्लास के शिक्षक नहीं हो क्या। उसने कहाः नहीं, इस क्लास का शिक्षक सुबह से क्रिकेट देखने चला गया है। वह मुझसे कह गया है कि मैं उसकी जगह जरा क्लास देख लूं।
तब तो हद हो गई बात की। इंस्पेक्टर पूरी तरह से गुस्सा हो आया, जोर से चिल्लाने लगा, टेबल ठोकने लगा और जितने भी नीति के वचन उसे मालूम थे, सब

उसने कहे। कोई मौका नहीं छोड़ता है किसी को उपदेश देने का। मौका मिल जाए, कौन छोड़ता है? उसने भी नहीं छोड़ा। बहुत चिल्लाया। शिक्षक भी पसीना-पसीना हो गया। लड़के भी घबड़ा कर रह गए। पता नहीं अब क्या होगा और क्या न होगा। फिर इंस्पेक्टर जाने को हुआ और हंसने लगा और अंतिम बात उसने यह कही। उसने कहाः मेरे मित्रो, आज तुम बच गए मुसीबत से। वह तो तुम्हारा भाग्य है कि असली इंस्पेक्टर सुबह से क्रिकेट का खेल देखने चला गया। मैं उसका दोस्त हूं। अगर आज असली इंस्पेक्टर होता तो तुम्हें इसका बहुत बुरा परिणाम भोगना पड़ता।
हमारी पूरी दुनिया ऐसी हो गई है। हर आदमी नहीं देख रहा है कि वह क्या
कर रहा है और हर आदमी दूसरे की जगह खड़ा हुआ है। और हर आदमी दूसरे का अभिनय कर रहा है जो वह है नहीं, और हर आदमी ने इस तरह की एक्टिंग और इस तरह की प्रतिमाएं अपने चारों तरफ खड़ी कर ली हैं खुद की। एक बड़े झूठ में हर आदमी घिर गया है।
और यह आदमी कहता है कि मुझे आत्मा को पाना है, मुझे शांति चाहिए, मुझे मोक्ष चाहिए, मुझे परमात्मा के दर्शन करने हैं। यह आदमी कह रहा है कि मुझे यह चाहिए। इस आदमी को सबसे पहले यही चाहिए कि वह अपने झूठे वस्त्रों को उतार दे, वह जो भीतर सच्चाई है, वह जो सच्चा आदमी है, उसको देखने के लिए राजी हो जाए। जिस दिन भी कोई आदमी अपने सच्चे आदमी को देखने के लिए राजी हो जाता है, उसी दिन उसके जीवन में एक क्रांति घटित होनी शुरू हो जाती है। उसी दिन एक परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। उसी दिन एक नई, एक नये जगत का द्वार जैसे खुलने लगता है। क्योंकि जब हम देखते हैं अपने भीतर सच्चे आदमी को, जो हम हैं, झूठे आदमी को नहीं, जो हमने दूसरों को दिखा रखा है कि जो हम हैं। जिस दिन हम सच्चे और ठोस और सच्चे आदमी की परख करना शुरू करते हैं, उसी दिन मन का रहस्य हमारे सामने खुलना शुरू हो जाता है कि यह मन क्या है। फिर इस मन को भरने का सवाल नहीं रह जाता, फिर इस मन को पूरा करने का सवाल नहीं रह जाता; क्योंकि जो मन क्रोध है, उसे कौन पूरा करना चाहेगा; क्योंकि जो मन द्वेष है, उसे कौन पूरा करना चाहेगा; क्योंकि जो मन चिंता है, दुख है, पीड़ा है उसे कौन पूरा करना चाहेगा।
जो मन इतना कुरूप है, उसकी सहायता में, उसके साथ, उसे पाने के लिए कौन यात्रा करना चाहेगा? तब इस मन के साथ अनिवार्यरूपेण, एक अनासक्ति फलित होती है। इस मन के दर्शन से, इस मन को देखने से, एक अनिवार्य वैराग्य इस मन के प्रति उदित होता है, उसे पैदा करना नहीं पड़ता। इस मन की कुरूपता को देखने से वह अपने आप सहज पैदा हो जाता है। और तब, तब इस मन को जानने के, इस मन को पहचानने के, इस मन से पूरी तरह परिचित होने की संभावना पैदा होती है। जब तक हम इस मन को भरने की कोशिश में हैं तब तक कौन, जानने की फुरसत किसे है, समय किसे है, अवकाश किसे है, ठहरने की सुविधा किसे है? मन कह रहा है, भागो- भागो इसको पाओ, उसको पाओ, यह लाओ, वह लाओ, यह मन क्यों कह रहा है? यह मन इसलिए कह रहा है, ताकि मन को आप न देख पाओ। भागते रहो, ताकि मन को न देख पाओ, क्योंकि जिस दिन भी आप रुकोगे, उसी दिन इस मन का दर्शन हो जाएगा।
और मन का दर्शन मन की मृत्यु है। मन को जो पूरी तरह देख लेगा, मन का नाश
हो जाएगा। मन विलीन हो जाएगा। मन को पूरी तरह देख लेना वैसा ही है जैसे कोई जहर की प्याली को पूरी तरह जान ले कि यह जहर है। और इसको पीने से मृत्यु होने वाली है। बात खत्म हो गई फिर जहर को छोड़ना थोड़े ही पड़ेगा। जाकर किसी साधु के चरणों में बैठ कर प्रतिज्ञा थोड़े ही लेनी पड़ेगी, कि मैं जहर को छोड़ने का व्रत लेता हूं। कि लेना पड़ेगा? कि जाके किसी मंदिर में भगवान को साक्षी रख कर कहना पड़ेगा कि हे भगवान, मेरी सहायता करना। मैं जहर को छोड़ने का व्रत लेता हूं। आजीवन अब जहर न पिऊंगा। नहीं, फिर कोई व्रत लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। व्रत उसको लेना पड़ता है, जो अपने को धोखा दे रहा है। जो अपने को देखता है, उसके लिए कोई व्रत नहीं रह जाता।
वह देखना ही, परिणाम में, परिवर्तन हो जाता है। इस बात को ठीक से देखना
कि यह मन कैसा अग्ली, कैसा कुरूप, कैसा गंदा, कैसा रोगग्रस्त, कैसा दुष्पूर है। मन की इस बॉटमलेस पिट को, यह जो खड्ढ है मन का, जिसको भरना संभव नहीं।
इस अनंत खड्ढ को ठीक से देखना ही इससे छुटकारा बन जाता है।

इसलिए पहली बात है, आत्मा को देखने की नहीं, मनुष्य की सच्चाई को, जैसा मनुष्य है, चाहे वह भीतर पशु हो, चाहे वह भीतर कितना ही कुरूप, कितना ही घिनौना हो, इस सीधे मनुष्य को पूरी तरह देखना जरूरी है। लेकिन हम, हम तो इसे कैसे देखेंगे, हम तो इसे छिपाने की कोशिश में संलग्न हैं। हम तो सब भांति फिर इसको ढांक रहे हैं कि यह दिखाई न पड़ जाए किसी को। हम तो इसे अच्छे-अच्छे शब्दों में, सभ्यता में, संस्कार में, समाज की बातों में, शिक्षा में इस तरह ढांक लेते हैं, जिसका कोई पता चलना ही मुश्किल हो जाता, पहचानना ही मुश्किल हो जाता है कि असली आदमी कहां है।
अगर हम खुद भी अपने भीतर जाएं, तो हमें वस्त्रों पर वस्त्रों की कतार-कतार, पर्त-पर्त मिलेगी। मुश्किल हो जाएगा, भीतर असली आदमी कहां है! इतने वस्त्र हमने ओढ़ लिये हैं। और कोई भी थोड़ा सा भी सजग होकर देखेगा, तो उसे दिखाई पड़ेगा कि दिन भर मैं वस्त्रा ओढ़े हूं, दिन भर मैं एक्टिंग कर रहा हूं। सुबह से लेकर सांझ तक। सांझ से लेकर फिर सुबह तक, सपने तक में हम वस्त्र ओढ़े खड़े रहते हैं। जागने की तो बात अलग है। और धीरे-धीरे भूल जाते हैं।
बर्ट्रेंड रसेल एक दिन सुबह अपने घर के द्वार पर टहल रहा था। एक आदमी
ने उससे आकर कहाः महानुभाव, मैंने आपकी बहुत सी किताबें देखी हैं, लेकिन मैंने उन सबको पढ़ने योग्य नहीं पाया। एक किताब मुझे पढ़ने योग्य मालूम पड़ी, तो मैंने उसे पढ़ा, लेकिन वह मेरी समझ में नहीं आई। केवल एक वाक्य मेरी समझ में आया और जो वाक्य समझ में आया वह निहायत गलत, बिल्कुल झूठ है जो तुमने कहा है उस किताब में।
रसेल ने कहाः वह कौन सा वाक्य है? उसे भी उत्सुकता हो गई कि जिस आदमी
ने सारी किताबें देखीं, एक किताब पढ़ने योग्य मालूम पड़ी, उस एक किताब को पूरा पढ़ा तो कुछ समझ में नहीं आया। एक वाक्य समझ मेंआया और वह वाक्य भी गलत है। कौन सा है वह वाक्य। उस आदमी ने कहाः तुमने अपनी किताब में लिखा हैः सीजर इ.ज डेड, कि सीजर मर गया। झूठी है यह बात, सीजर को मरे सैकड़ों वर्ष हो चुके हैं।
रसेल भी घबड़ाया, उसने कहा कि क्यों इसका क्या प्रमाण है कि यह झूठी है। उसने कहाः प्रमाण यह कि मैं ही हूं सीजर। और क्या प्रमाण चाहिए। रसेल ने उससे हाथ जोड़े। ऐसे आदमी से बातचीत करने का कोई अर्थ न था। पीछे पता चला, वह आदमी एक नाटक में सीजर का काम किया था और पागल हो गया था। और तब से वह यही समझने लगा है कि मैं सीजर हूं। और वह यही कहता फिर रहा था कि मैं सीजर हूं। मैं फलां हूं, मैं ढिकां हूं। यह आदमी विक्षिप्त है, क्योंकि इसने अभिनय को सत्य समझ लिया।
हिंदुस्तान के एक पागलखाने में, नेहरू तब जिंदा थे, उस पागलखाने को देखने गए। एक पागल उस पागलखाने से मुक्त होने को था। वह स्वस्थ हो गया। अधिकारियों ने रोक रखा था कि कल नेहरू आने को हैं, तो उन्हीं के हाथ से इसे छुटकारा पागलखाने से दिला देंगे। उस दिन उत्सव हुआ। और नेहरू ने उस आदमी को धन्यवाद दिया, उसकी पीठ थपथपाई। और कहा कि बड़ा अच्छा है कि तुम ठीक हो गए। उस आदमी ने पूछा कि महाशय क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपका नाम क्या है? उन्होंने कहाः मेरा नाम जवाहरलाल नेहरू है। उस आदमी ने जवाहरलाल नेहरू की पीठ थपथपाई और कहाः घबड़ाओ मत! आप भी अगर यहां दो-तीन साल रह जाओ, तो ठीक हो जाओगे। क्योंकि तीन साल पहले मुझे भी यही खयाल था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। अब मुझे यह खयाल नहीं है।
हम सारे लोगों को कुछ-कुछ खयाल है कि हम कौन हैं और क्या हैं। अगर कोई धक्का दे दे आपको रास्ते में, तो आप कहते हैं, जानते नहीं मैं कौन हूं? सबको खयाल है कि हम कुछ हैं। और बड़ा मजा यह है कि वह जो कुछ होने का खयाल है, निश्चित ही झूठा होगा। क्योंकि आपको यह तो पता ही नहीं है कि आप कौन हैं। वह कोई ओढ़ा हुआ अभिनय होगा, एक्टिंग होगी। कोई खयाल आपको पकड़ गया होगा कि आप यह हैं। और फिर उसको आप जोर देते चले गए होंगे कि मैं यह हूं, मैं यह हूं।
सारे वस्त्रा उतारकर जो अपने सच्चाई से भरे, ठोस व्यक्तित्व को देखने चलेगा, उसके जीवन में एक क्रांति निश्चित हो सकती है। कैसे हम उसके वस्त्र

उतार दें, और कैसे उन वस्त्रों के पीछे गहरे से गहरे आत्मा को, सच्चाई को, सत्य को खोज लें। उसकी बात मैं आने वाले दिनों की चर्चा में आपसे करूंगा।
अभी तो मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि झूठे हैं हमारे वस्त्रा, नितांत झूठे हैं। हमने दूसरों को धोखा देने के लिए उन वस्त्रों को ईजात किया है। मैं अच्छा आदमी हूं, भला आदमी हूं मैं, यह हूं, मैं वह हूं।
एक साधु गांधी के पास आया और उसने कहा फिरः मैं जाना चाहता हूं गांव में सेवा करने। गांधी ने कहाः पहली सेवा तुम यह करो, अपने यह गेरुए वस्त्र उतार दो, क्योंकि अगर इन वस्त्रों को पहन कर तुम गांव में गए, तो लोग तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम उनकी सेवा न कर पाओगे। उस आदमी ने कहाः ये वस्त्र मैं कैसे उतार सकता हूं, मैं संन्यासी हूं। जैसे कि गेरुआ वस्त्र पहनना और संन्यासी होना एक ही बात है। जैसे कि गेरुए वस्त्र से संन्यास का कोई भी संबंध है। जैसे कि रंग और वस्त्रों से भी संन्यास का कोई वास्ता है। वह आदमी वापस लौट गया। उसने कहाः और सब-कुछ कहिए तो ठीक, लेकिन गेरुए वस्त्र, यह मैं कैसे उतार सकता हूं। मैं संन्यासी हूं।
हम सब भी कुछ न कुछ होने के वस्त्र पहने हुए हैं। और कोई अगर हमसे यह कहेगा, उतारिए ये वस्त्र, तो हम यह कहेंगे, मैं ये वस्त्र कैसे उतार सकता हूं, मैं तो मिनिस्टर हूं गुजरात का। ये वस्त्र मैं कैसे उतार सकता हूं, मैं तो फलां हूं। ये वस्त्र मैं कैसे उतार सकता हूं? और सब कहिए, वस्त्र उतारने की बात मत कहिए, क्योंकि यही तो मेरा व्यक्तित्व है, यही तो मेरी पर्सनेलिटी है, यही तो मैं हूं। और बड़ा मजा यह है कि इन्हीं वस्त्रों के कारण जो मैं हूं उसे हम नहीं जान पाते।
एक बात आज सुबह अंतिम रूप से आपसे कहना चाहता हूं। मनुष्य का सारा व्यक्तित्व, झूठे वस्त्रों का व्यक्तित्व है। और जो आदमी इन झूठे वस्त्रों को पकड़े रहेगा वह आदमी कभी उस सत्य को नहीं जान सकेगा, जो उसके भीतर छिपा है। वह आदमी कभी भी जीवन के अर्थ और आनंद से परिचित नहीं हो सकता, क्योंकि झूठे वस्त्रों में कैसे हो सकता है कोई आनंद? झूठे वस्त्रों में झूठा आनंद ही हो सकता है। झूठे व्यक्तित्व में आनंद की झूठी झलक ही हो सकती है। जब झूठे वस्त्रों के व्यक्तित्व को हम सच्चा समझे हैं, तो परिणाम में हम जिन आनंदों को सच्चा समझे हैं, वे भी सच्चे नहीं हो सकते। हमारा सारा व्यक्तित्व एक बड़ी झूठ है। इसलिए हमारे सुख भी झूठे हैं। हमारे आनंद भी झूठे हैं। हमारे जीवन की प्रफुल्लता और हंसी झूठी है।
किसी भी आदमी की मुस्कुराहट पकड़ कर थोड़ा उसके भीतर जाओ, पाओगे कि मुस्कुराहट ऊपर थी, भीतर सब दुख है, सुबह से किसी आदमी से पूछोः कैसे हैं? खूब मुस्कुरा कर कहता है: बिल्कुल अच्छा हूं। बिल्कुल झूठी है यह बात। कोई आदमी बिल्कुल अच्छा नहीं है, नहीं तो दुनिया और हो जाती। लेकिन सब शब्द हैं, जो हम उपयोग कर रहे हैं और कहे जा रहे हैं।
नीत्शे से किसी ने पूछा कि तुम हमेशा हंसते रहते हो। इतने प्रसन्न। क्या बात है? शायद नीत्शे ने बड़ी अदभुत और सच्चाई की बात कही। उसने कहा कि मैं इसलिए हंसता रहता हूं, ताकि रोने न लगूं, इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। इससे पहले कि रोना आए, मैं हंसने लगता हूं, ताकि जो रोना है, वह भीतर ही रह जाए और हंसी बाहर से काम कर जाए। और रोने का मौकष न आए। धीरे- धीरे मैं यह तरकीब सीख गया। अब तो मैं दिन भर हंसता रहता हूं, ताकि रोना ऊपर न आए। रोना बाहर आ जाए, तो बहुत कठिनाई हो सकती है।
तो हमने भीतर जो है वह बाहर न आ जाए, उसे भीतर छिपाने के लिए बाहर हंसी, बाहर फूल, बाहर सुन्दर बा.ग, बाहर सब सजा रखा है। भीतर सब कुरूप हो गया, भीतर सब बीमार और रुग्ण हो गया है। इसे हम कैसे जान सकते हैं। और कैसे इसके पार हुआ जा सकता है, उसकी बात मैं आने वाले दो दिनों में आपसे करने को हूं। एक छोटी सी कहानी अंत में और मैं अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।
एक रात एक रेगिस्तानी सराय में एक काफिला आकर ठहरा। उसने अपने ऊंटों
को बांधा, खूंटियां गड़ाईं, रस्सियां बांधीं आधी रात हो गई थी बांधते- बांधते। आखिर में ऊंट के मालिकों को पता चला, एक ऊंट की खूंटी और रस्सी रास्ते में कहीं खो गई है। निन्यानबे ऊंट बांध दिए गए थे, सौवां ऊंट अनबंधा रह गया था। रात थी अंधेरी, अनबंधा ऊंट छोड़ा जा सकता था। रात भटक

सकता था। बांध देना जरूरी था। वह भागा हुआ सराय के बूढ़े मालिक के पास गया और उसने कहा: खूंटी हो आपके पास एक और थोड़ी रस्सी, तो दे दें! एक ऊंट हमारा अनबंधा रह गया है।
उस मालिक ने कहाः नहीं, खूंटी और रस्सी तो नहीं है, लेकिन रात अंधेरी है, घबड़ाओ मत। जाओ झूठी खूंटी गाड़ दो और झूठी रस्सी बांध दो और ऊंट से कहो, सो जाओ। वह आदमी हंसा। उसने कहाः मेरी जिंदगी हो गई ऊंट बांधते हुए, कहीं झूठी खूंटी से और झूठी रस्सी से ऊंट बंधे हैं? तुम क्या ऊंट को कोई आदमी समझते हो कि झूठी खूंटी और रस्सियों से बंध जाए? लेकिन उस सराय के मालिक ने कहाः घबड़ाओ मत, ऊंट आदमी से ज्यादा समझदार नहीं होते, तुम जाओ कोशिश करो। फिर कोई उपाय भी नहीं है इसके सिवाय। खूंटियां हैं नहीं हमारे पास। मजबूरी थी जाना पड़ा। ऊंट के मालिक ने झूठी खूंटी गाड़ी अंधेरे में, थी नहीं सिर्फ ठोका, आवाज की, जैसी कि असली खूंटी होती, तो आवाज करता। आवाज सुन कर ऊंट खड़ा था, बैठ गया। फिर उसने गले में हाथ डाला और झूठी रस्सी बांधी, जो थी नहीं, लेकिन उस तरह हाथ फेरा, जैसा कि असली रस्सी बांधता, तो फेरता, और रस्सी को बांध दिया। ऊंट से कहाः सो जाओ। और चला गया और देख कर हैरान हुआ कि ऊंट सो गया। सुबह जल्दी ही उनको नई अपनी यात्रा पर निकलना था, सारे ऊंट की खूंटियां उखाड़ दी गईं। उसकी तो कोई खूंटी न थी, कौन उखाड़ता, कैसे उखाड़ता। सारे ऊंट उठ कर खड़े हो गए जाने को, लेकिन बंधा हुआ ऊंट, सौवां ऊंट बैठा रह गया, वह उठा नहीं। उसे बहुत धक्के दिए, कोड़े मारे, लेकिन वह उठता नहीं था। उठता भी कैसे वह? बेचारा बंधा हुआ था। बड़ी मुश्किल हो गई। भागे हुए उस बूढ़े के पास गए कि तुमने कोई मंत्र कर दिया क्या। हमें तो रात ही हैरानी हुई थी कि हद हो गई कि ऊंट झूठी खूंटी से बंध गया। अरे ऊंट कोई आदमी है क्या। लेकिन फिर भी ऊंट भी धोखा खा गया। तुमने कर क्या दिया। ऊंट उठ नहीं रहा है। उस मालिक ने कहाः पहले खूंटी उखाड़ो। पहले रस्सी खोलो। उन्होंने कहाः कौन सी रस्सी, कौन-सी खूंटी? उसने कहाः वही जो रात गाड़ी थी और बांधी थी।
मजबूरी थी ऊंट उठता नहीं था। खूंटी उखाड़नी पड़ी, जो थी ही नहीं। रस्सी खोलनी पड़ी, जिसका कोई अस्तित्व न था। और ऊंट उठ कर खड़ा हो गया।
मैंने यह घटना सुनी है ऊंट के बाबत। मुझे पता नहीं ऊंटों के संबंध में
यह सच है या नहीं। लेकिन जितने आदमियों को मैंने अपनी जिंदगी में देखा है, सबको ऐसी खूंटियों से बंधा हुआ, जो हैं ही नहीं। और ऐसी रस्सियों से बंधा हुआ, जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन इन खूंटियों को भी उखाड़ना पड़ेगा, चाहे वह हो या न हो, और उन रस्सियों को भी खोलना पड़ेगा, चाहे उनका कोई अस्तित्व हो या न हो।
तो कैसे उन खूंटियों को हम उखाड़ सकते हैं, उसकी मैं आपसे बात करूंगा। मेरी बातों को आज की सुबह इतने प्रेम और शांति से आपने सुना। परमात्मा करे, आप सच में ही मेरी बातों को सुन पाए हों, क्योंकि कान बहुत दुर्लभ हैं और आंखें बहुत मुश्किल। लेकिन फिर भी मैं आशा करता हूं, किसी ने जरूर सुना होगा। और हो सकता है, यह बात उसके भीतर पहुंच जाए और उसके भीतर एक चिंगारी पैदा हो जाए और कुछ हो सके। मैं धन्यवाद देता हूं कि आपने कम से कम सुनने की कोशिश तो की, चाहे सुना हो, चाहे न सुना हो।

और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का दर्शन
दूसरा प्रवचन

प्रेम है दान स्वयं का

मेरे प्रिय आत्मन्!
उस कहानी का संबंध कल मैंने जो आपसे कहा है उससे बहुत गहरा है। कल मैंने जो आपसे कहा है, वह उस कहानी में पूरा का पूरा वापस आपके सामने खड़ा हो सके, इसीलिए उसे दोहराऊंगा।
एक सम्राट के दरबार में एक दिन एक बहुत आश्चर्यजनक घटना घटने को थी। सारी राजधानी महल के द्वार पर इकट्ठी हो गई। शाही दरबार के सारे सदस्य मौजूद थे और सभी बड़ी आतुर प्रतीक्षा से ठीक घड़ी का इंतजार कर रहे थे। एक व्यक्ति ने आज से छह महीने पहले सम्राट को कहा था, तुम इतने बड़े सम्राट हो, तुम्हें साधारण आदमी के वस्त्र शोभा नहीं देते। तुम चाहो, तो मैं देवताओं के वस्त्र स्वर्ग से तुम्हारे लिए ला सकता हूं। सम्राट के लोगों को यह बात पकड़ गई थी। और उसने सोचा, उचित होगा यह, कि मनुष्य-जाति के इतिहास में मैं पहला मनुष्य होऊंगा, जिसने देवताओं के वस्त्र पहने।
संदेह तो उसके मन को हुआ कि देवताओं के वस्त्र कैसे लाए जा सकेंगे? लेकिन, हर्ज भी क्या था। थोड़े-बहुत रुपयों का खर्च ही हो सकता था। वह आदमी धोखा भी क्या दे सकता था। सम्राट ने कहाः मैं राजी हूं, जो भी खर्च हो, करो और देवताओं के वस्त्र ले आओ। कब ला सकोगे? उस आदमी ने छह महीने का समय मांगा और कई लाख रुपये मांगे, क्योंकि देवताओं तक पहुंचने में द्वारपालों से लेकर बीच के सभी अधिकारियों को बहुत रिश्वत देनी जरूरी थी। जमीन पर ही रिश्वत चलती हो ऐसा नहीं है, वहां स्वर्ग में भी चलती थी।
उसे रुपये दे दिए गए। और वह हर माह और रुपये की मांग करने लगा। उतने से कुछ नहीं हो सकता, और रुपये चाहिए। दरबारियों को संदेह था, वजीरों को संदेह था कि वह आदमी धोखा दे रहा है, लेकिन राजा अपने लोभ के कारण संदेह को दबाए बैठा था। और प्रतीक्षा कर रहा था कि आखिर वह कितने लेगा और छह महीने पूरे होने को आ गए।
जिस दिन सुबह उसे वस्त्र लेकर दरबार में उपस्थित होना था, उस रात उस आदमी के महल पर चारों तरफ पुलिस का पहरा लगा दिया गया था कि कहीं वह रात भाग न जाए। लेकिन वह भागा नहीं, वह अपने वचन का पूरा सिद्ध हुआ और सुबह लोगों ने देखा कि वह एक बहुमूल्य पेटी में वस्त्रों को लेकर राजमहल की तरफ चल पड़ा।
स्वभावतः सभी की उत्सुकता थी। उसने पेटी जाकर राजदरबार में रखी। अब
तो संदेह का कोई कारण न था। वह वस्त्र ले आया था। राजा ने अपने वजीरों की तरफ देखा, जो निरंतर कहते रहे थे कि यह आदमी धोखेबाज मालूम होता है। देवताओं के वस्त्र न कभी देखे गए, न सुने गए। उस आदमी ने पेटी खोली और पेटी खोलने के बाद, उसने कहा राजा को: अपने वस्त्र उतार दें और नये वस्त्र सबके सामने पहन लें। लेकिन इसके पहले कि मैं वस्त्र आपको दूं, देवताओं ने एक शर्त रख दी है, वह बता देना जरूरी है। ये वस्त्र केवल उसी को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने ही पिता से पैदा हुआ हो।
उसने पेटी खोली और खाली हाथ बाहर निकाला, कहाः यह पगड़ी सम्हालो। राजा
को हाथ खाली दिखाई पड़ रहा था, लेकिन पूरे दरबारी तालियां बजा रहे थे और कह रहे थे, ऐसी सुंदर पगड़ी हमने कभी देखी नहीं। सभी दरबारियों को हाथ खाली दिखाई पड़ रहा था, लेकिन शेष सारे लोग जब तालियां बजा रहे हों, तो कौन पागल बने और कौन अपने पिता पर संदेह की अंगुली उठवाए। इसलिए हर आदमी बहुत जोर से प्रशंसा कर रहा था, ताकि पड़ोसी यह समझ ले कि मुझे बिल्कुल ठीक-ठीक दिखाई पड़ रही है, पगड़ी बहुमूल्य थी, ऐसी कभी देखी नहीं गई थी।
राजा हतप्रभ खड़ा था, अगर इनकार करता था, तो इससे ज्यादा असम्मान की और कोई बात नहीं हो सकती थी। हां भरना ही उचित था। उसने अपनी पगड़ी, जो कि थी, उस आदमी के हाथों में दे दी और वह पगड़ी ले ली, जो कि बिल्कुल नहीं थी और सिर पर रख ली। लेकिन पगड़ी तक ही बात होती तो मामला चल जाता। फिर कोट भी उतर गया, फिर कमीज भी, फिर धोती भी और फिर अंतिम वस्त्र के उतरने का समय आ गया।

एक-एक वस्त्र वह आदमी निकालता गया और बोलता गया यह लें। और राजा एक-एक वस्त्र छोड़ता गया। अंतिम वस्त्र छोड़ने में उसे बहुत घबड़ाहट मालूम हुई, वह बिल्कुल नग्न हुआ जा रहा था। लेकिन सारे दरबारी ताली बजा रहे थे कि धन्य हैं हमारे महाराज! इतने सुंदर वस्त्र! वे इतने सुंदर कभी नहीं दिखाई पड़े थे। ऐसे वस्त्र पहली दफे मनुष्य को उपलब्ध हुए हैं।
राजा इनकार भी करता तो क्या? उसने सोचा, उचित है कि मैं नग्न ही हो जाऊं। अंतिम वस्त्र भी छोड़ दिया गया, राजा बिल्कुल नग्न खड़ा था। हर आदमी देख रहा था राजा नंगा है, लेकिन कौन कहता। और तब वह आदमी जो देवताओं के वस्त्र लेकर आया था, उसने कहाः उचित होगा देवताओं के वस्त्र पृथ्वी पर पहली बार उतरे हैं, तो आपकी शोभायात्रा निकले, जुलूस निकले, सारा नगर देख ले। इनकार करना कठिन था। मजबूरी थी, राजा को राजी होना पड़ा।
नग्न राजा रथ पर बैठ कर नगर में चला, लाखों लोगों की भीड़ दोनों तरफ इकट्ठी है। हर आदमी देख रहा है कि राजा नंगा है, लेकिन कौन कहे। भीड़ तालियां बजा रही थी और वस्त्रों की प्रशंसा कर रही थी। सारे नगर में वस्त्रों की प्रशंसा थी और एक भी आदमी यह कहने वाला नहीं था कि मुझे वस्त्र दिखाई नहीं पड़ते। राजा नंगा है।
एक छोटे से बच्चे ने, जो अपने बाप के कंधे पर सवार होकर भीड़ में वस्त्रों को देख रहा था, उसने कहाः अपने पिता से कहा, लेकिन मुझे तो वस्त्र दिखाई नहीं पड़ते। उसके पिता ने कहाः चुप नासमझ, अभी तुझे कोई अनुभव नहीं है। मैं अनुभव से कहता हूं जीवन भर के, कि वस्त्र हैं और मैंने अपने बाल धूप में नहीं पकाए। चुप रह इस तरह की बात मुंह से मत निकाल। जब तू भी अनुभवी हो जाएगा, तो तुझे भी वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे। शायद और छोटे कुछ बच्चों ने शक पैदा किया हो, लेकिन बच्चों की कौन सुनता है, बूढ़े बहुत समझदार हैं। और बूढ़ों ने बच्चों की जबानें बंद कर दी होंगी। अनुभवी लोग गैर-अनुभवी लोगों की.जबान हमेशा बंद कर देते हैं।
वह शोभा यात्रा निकल गई, गांव भर में उस दिन, उस रात उन्हीं वस्त्रों
की चर्चा होती रही और हर आदमी अपने मन में सोचता रहा कि राजा नंगा था, फिर ये सारे लोग वस्त्रों की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?
इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं अपनी बात को कि मनुष्य के जीवन में ऐसा ही हो गया है। हजारों असत्यों पर हम केवल इसलिए स्वीकृति दे रहे हैं कि भीड़ उन असत्यों के लिए ताली बजा रही है और हां कर रही है। हजारों असत्यों को हम इसलिए मानने को राजी हो गए हैं क्योंकि हममें अकेले होने की हिम्मत नहीं है, हम हमेशा भीड़ के साथ खड़ा होना पसंद करते हैं, ज्यादा सुरक्षित अनुभव करते हैं। किसी व्यक्ति में व्यक्ति होने का साहस नहीं है, इसलिए असत्य हमारे जीवन में सत्य बन कर बैठ गए हैं। और फिर हजारों वर्ष तक जब असत्य दोहराए जाते हैं और हजारों वर्षों की परंपरा जब उन असत्यों को सत्य की प्रतिभा दे देती है, सत्य की प्रतिष्ठा दे देती है और जब बचपन से बच्चे के अबोध मन पर उनकी छाप डालनी शुरू कर दी जाती है, तो शायद हमें स्मरण ही नहीं रह जाता कि असत्य सत्य जैसे कब प्रतीत होने लगे।
एक छोटे से बच्चे को हम मंदिर में ले जाते हैं और एक पत्थर की मूर्ति
के सामने उससे कहते हैंः भगवान हैं ये, इनको प्रणाम करो। बच्चे के मन में वही होता होगा, कहां हैं भगवान! यहां तो एक पत्थर की मूर्ति रखी हुई है। वही होता होगा जो उस नगर में बच्चों के मन में हुआ था कि राजा तो नंगा है, लेकिन बड़े-बुजुर्ग कह रहे थे कि वस्त्र पहने हुए हैं। वह बच्चा भी देखता है और उसके पिता झुक रहे हैं, उसके पिता के पिता भी झुकते रहे हैं और हजारों वर्षों से इस मूर्ति को भगवान मानने वाले लोग रहे हैं और मैं नासमझ, मैं अबोध हूं। वह शायद स्वीकार कर लेता है और राजी हो जाता है। और जब तक उसका बोध जागता है, तब तक इस आदत का वह इतना आदी हो जाता है कि फिर शक करने का, संदेह करने का उसे खयाल भी नहीं उठता। वह भी अपने बच्चों को इसी झूठ को सिखा जाएगा, जो उसके मां-बाप ने उसे सिखा दिए हैं।
इस तरह झूठ यात्रा करते हैं हजारों साल की। और फिर उन हजारों साल के प्रतिष्ठित झूठों से मनुष्य बंध जाता है। जो आदमी इन बंधनों को न तोड़े, इन झूठी खूंटियों से अपने को मुक्त न कर ले, उस आदमी के जीवन में सत्य का कभी

आगमन नहीं हो सकता। जो असत्य को उघाड़ कर असत्य की भांति देखने में समर्थ नहीं है, सत्य के दर्शन की भी संभावनाओं को बंद कर रहा है। सत्य को जानने के पहले असत्य को असत्य की भांति जान लेना बहुत जरूरी है, जो असत्य से नहीं छूटता सत्य से उसका कोई संबंध नहीं हो सकता है।
इसलिए सत्य की दिशा में जहां-जहां असत्य हैं, परंपरा से पूजित हजारों वर्ष की प्रतिष्ठा से मंडित, हजारों सदियों से हजारों लोगों के द्वारा उच्चरित उन सब पर संदेह की एक दृष्टि और विचार की एक प्रक्रिया से, उन सबको फिर से देख लेना, हर व्यक्ति के लिए जरूरी है। जो आदमी ठीक से संदेह करना नहीं सीख पाता, वह कभी फिर धार्मिक नहीं हो सकता, क्योंकि संदेह किए बिना, राइट डाउट किए बिना, ठीक-ठीक संदेह किए बिना, कोई मनुष्य असत्यों की असत्यता को कैसे देख सकेगा।
संदेह का सत्य, संदेह की शक्ति यही है कि वह असत्य के असत्य होने को प्रदर्शित कर देती है। संदेह असत्य की हत्या का उपकरण है, लेकिन हमें तो हजारों वर्षों से सिखाया जा रहा है कि विश्वास करो।

पूछे हैं प्रश्न, कोई दस-पांच मित्रों ने पूछे हैं कि बिना श्रद्धा और बिना विश्वास के तो धर्म नष्ट हो जाएगा?

सच्चाई उलटी है, विश्वास और श्रद्धा के कारण धर्म का जन्म ही नहीं हो पाया है। ठीक-ठीक धर्म पैदा होगा सम्यक संदेह से, तर्क और विचार से, चिंतन और मनन से स्पष्ट और निष्पक्ष विचार की ऊर्जा ही ठीक-ठीक धर्म को जन्म देती है, क्योंकि जो विश्वास कर लेता है, वह अंधा हो जाता है। सब विश्वास, विश्वास मात्र अंधे होते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि अंधी श्रद्धा तो बुरी बात है, हम मान सकते हैं, लेकिन श्रद्धा ही बुरी बात है, यह हम नहीं मान सकते।

शायद उन्हें पता नहीं है, श्रद्धा यानी अंधापन, अंधी श्रद्धा जैसी कोई चीज नहीं होती। श्रद्धा मात्र अंधी होती है। श्रद्धा का मतलब क्या है? विश्वास का, बिलीव का अर्थ क्या है? उसका अर्थ है जो मैं नहीं जानता हूं उसे मैंने मान लिया है। जिससे मैं परिचित नहीं हूं उसे मैंने स्वीकार कर लिया है। जो मुझे अज्ञात है उसे मैंने दूसरों की बातों के कारण ज्ञात मान लिया है। क्या यह अंधापन नहीं है?
आस्तिक भी अंधे होते हैं और नास्तिक भी। आस्तिक मान लेते हैं सुनी हुई इन बातों को कि ईश्वर है, और नास्तिक मान लेता है सुनी हुई इन बातों को कि ईश्वर नहीं है। दोनों अंधे हैं। दोनों ने सुने हुए को स्वीकार किया है और दोनों ने देखने की कोई कोशिश नहीं की, कोई प्रयास नहीं किया। देखने के प्रयास में तो श्रम पड़ता है, देखने के प्रयास में तो कुछ करना पड़ेगा, मानने के प्रयास में कुछ भी नहीं करना पड़ता। जितने आलसी लोग हैं पृथ्वी पर, इसलिए वे मानने के लिए रा.जी हो जाते हैं, जानने की फिकर छोड़ देते हैं। मानना आलसी चित्त का लक्षण है। मैं न मानने को नहीं कह रहा हूं, क्योंकि न मानना मानने का ही एक रूप है। मैं कह रहा हूं, जानने की फिकर होनी चाहिए भीतर, और वह तभी हो सकती है, जब हम मानने को या न मानने को, विश्वास करने को या अविश्वास करने को बहुत जल्दी तत्पर न हो जाएं।
वह व्यक्ति, जो यह कहने में समर्थ है कि मुझे ज्ञात नहीं है कि ईश्वर
है, मुझे यह भी ज्ञात नहीं है कि ईश्वर नहीं है, मैं बिल्कुल अज्ञान में हूं, मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है, ऐसा व्यक्ति ठीक स्थिति में है। इसकी यात्रा हो सकती है सत्य के प्रति। इसने कुछ भी माना नहीं है, और अपने अज्ञान को स्वीकार किया है। अज्ञान सत्य है। इस सत्य अज्ञान को, जो स्वीकार करता है, वह तो सत्य तक पहुंच सकेगा। लेकिन इस सत्य अज्ञान को जो दूसरों की बातों से ढांक कर ज्ञान बना लेता है, वह आदमी कैसे सत्य तक पहुंच पाएगा।

आपको पता है ईश्वर के संबंध में? आप जानते हैं? पहचानते हैं? है वही
या नहीं है? दोनों बातें आपको पता नहीं हैं। लेकिन बचपन से हम कुछ सुन रहे हैं और उस सुने को हमने स्वीकार कर लिया है। और उस स्वीकृति पर ही हमारी खोज की मृत्यु हो गई, हत्या हो गई। जो आदमी स्वीकार कर लेता है, वह आदमी अंधा हो गया।
एक मित्र ने पूछा हैः लेकिन यदि हम इस भांति स्वीकार न करें; अगर हम इस भांति, जो लोग जानते हैं उनकी बात स्वीकार न करें, तो हम खोजेंगे कैसे? नहीं, जो लोग जानते हैं कि यह भी हमारी स्वीकृति है। हमें कैसे पता है
कि वे जानते हैं। यह भी हमारा विश्वास है कि वे जानते हैं और फिर उन्हें मिला है कुछ, इसलिए हम थोड़े ही खोज करते हैं; हम खोज इसलिए करते हैं कि हमारे प्राणों में एक रिक्तता है। हमारे प्राणों में एक दुख है, एक अंधेरा है। और वह अंधेरा मांग करता है प्रकाश की, वह दुख मांग करता है आनंद की। हमारे भीतर एक अज्ञान है, वह ज्ञान की अभीप्सा हमारे अंदर पैदा करता है। हमारे भीतर एक प्यास है, जो हमें सरोवर की तरफ ले जाती है।
पानी के संबंध में दूसरे लोगों की कही हुई बातें थोड़ी किसी को सरोवर
तक ले जाती हैं। भीतर की प्यास ले जाती है सरोवर की खोज में। कोई कितना ही पानी के संबंध में बातें करे और जल पर ग्रंथ लिखे, उसके ग्रंथ पढ़ कर थोड़ी कोई सरोवर की खोज में जाएगा। सरोवर की खोज में तो तभी कोई जाता है, जब उसके प्राण प्यासे हो उठते हैं।
इसलिए कोई दूसरा किसी को परमात्मा की खोज में न कभी ले गया है और न ले
जा सकता है। परमात्मा की खोज में तो ले जाता है जीवन का दुख, जीवन का अज्ञान, जीवन की अपूर्णता, जीवन की पीड़ा और चिंता, वह जो जीवन का संताप है, वह जो एंग्विस है, वह जो प्रतिपल सब अंधकारपूर्ण है, वह हमसे कहता है, प्रकाश को खोजो। लेकिन जो व्यक्ति दूसरों की प्रकाश की कही गई बातों को मान लेता है, वह एक बड़े खतरे में पड़ जाता है। वह खतरे में इसलिए पड़ जाता है कि दूसरे की प्रकाश की बातें, जिसके पास अपनी आंखें न हों, उसके लिए बहुत अजीब अर्थ लेकर स्पष्ट होती हैं।
एक अंधे आदमी को उसके मित्रों ने दावत दी थी। बहुत मिष्ठान्न बनाए थे। उसने मिठाइयां खाकर पूछाः किससे बनी हैं, कैसे बनी हैं, क्या है वह? उसे मैं जानना चाहता हूं। मित्रों ने कहाः दूध से बनी हैं ये मिठाइयां। उस अंधे आदमी ने कहाः दूध कैसा होता है, कैसा है उसका रंग? नासमझ होंगे मित्र। अंधे का पूछना तो उचित था, जिज्ञासा ठीक थी। एक मित्र ने कहाः सफेद, शुभ्र। उस अंधे आदमी ने पूछाः शुभ्र क्या होता है, सफेद क्या होता है? उसे तो किसी रंग का, कोई प्रकाश का कभी कोई अनुभव नहीं था। उसकी तो आंखें बंद थीं। शुभ्र और सफेद शब्द मात्र थे, इनसे कुछ भी स्पष्ट न होता था। आंख वाले मित्रों में से एक ने कहाः बगुला देखा है? बगुला के पंखों जैसा सफेद होता है दूध। उस अंधे आदमी ने कहाः पहेलियों पर पहेलियां पैदा कर रहे हैं आप। मुझे दूध का ही पता नहीं है, अब यह बगुला क्या होता है और यह बगुले का रंग कैसा होता है? यह और एक कठिनाई हो गई, तो पहले कृपा करके बगुले के संबंध में समझा दें, फिर मैं दूध के संबंध में भी समझ लूंगा।
पिछला प्रश्न अपनी जगह खड़ा रहा, समझाने की कोशिश ने नया प्रश्न खड़ा कर दिया, और समझाने की कोशिश और नया प्रश्न खड़ा कर देगी। पांच हजार सालों से दार्शनिक समझाते जाते हैं, उनके हर समझाने की कोशिश नये प्रश्न खड़े कर देती है, पुराने प्रश्न अपनी जगह मौजूद हैं। उनमें कोई अंतर नहीं पड़ता, नये प्रश्न खड़े करते जाते हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने पीछे एक जगह कहा कि पहले जब मैं बच्चा था, तो मैं सोचता थाः फिलासफी ने, दर्शन ने, दार्शनिकों ने, विचारकों ने, दुनिया के प्रश्न हल किए हैं। अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं, तो मैं समझता हूं, उन्होंने केवल नये प्रश्न खड़े किए हैं, क्योंकि पुराने प्रश्न तो अपनी जगह खड़े हुए हैं। कोई प्रश्न आज तक, कोई दार्शनिक हल नहीं कर पाया है। प्रश्न अपनी जगह खड़ा है, उसने जो उत्तर दिया है, उससे नये प्रश्न जरूर खड़े हो गए हैं।

उस अंधे आदमी की भी वही मुश्किल हो गई। लेकिन मित्र समझाने के पीछे दीवाने थे, उन्हें इसकी फिकर ही न थी कि आदमी अंधा है। उन्हें अपने समझाने की फिकर थी, उनको अपना रस आ रहा था समझाने का। उन्हें समझा कर छोड़ना था। एक आदमी ने उस अंधे की बगल में हाथ किया और कहाः मेरे हाथ पर हाथ फेरो। जैसा मेरा हाथ तुम्हें लंबा और सुडौल मालूम पड़ता है, ऐसे ही बगुले की गर्दन होती है। थोड़ा-बहुत तो इससे तुम्हें बगुले की समझ आ ही जाएगी। उस आदमी ने उसके हाथ पर हाथ फेरा और वह खुशी से नाच उठा। और उसने कहाः मैं समझ गया, दूध कैसा होता है। आदमी के हाथ की तरह दूध होता है।
ठीक है उसकी समझ। दूध के लिए प्रश्न उठा था। यह सारी कथा से इस सारे अनुमान से, उस अंधे आदमी ने निष्कर्ष निकाला कि दूध आदमी के झुके हुए हाथ की तरह होता है।
ईश्वर के संबंध में हमारे सब निष्कर्ष ऐसे ही हैं। और चूंकि अलग-अलग मुल्कों में अंधों ने अलग-अलग निष्कर्ष ले लिए हैं, तो किन्हीं अंधों ने मस्जिद बना ली है, किन्हीं अंधों ने मंदिर, किसी ने भगवान की एक शक्ल, किसी ने दूसरी, क्योंकि किसी को बगुले की तरह समझ में आया है, किसी को किसी और तरह समझाया गया है। और फिर इन अंधों ने हद कर दी आखिर में, न केवल यह कहते हैं कि दूध झुके हुए हाथ की तरह होता है, बल्कि यह भी कहते हैं कि अगर कोई और तरह के दूध को मानता है, तो हम हत्या कर देंगे, वह गलत बात कहता है।
तो फिर उन अंधों ने सारी दुनिया में उपद्रव किए हैं। धर्म के नाम पर
जो उपद्रव हुए हैं, वे अंधे आदमियों के उपद्रव हैं। नहीं तो धर्म के नाम पर उपद्रव हो सकते हैं, धर्म के नाम पर हत्याएं हो सकती हैं, धर्म के नाम पर मकान और मंदिर जलाए जा सकते हैं और बच्चे और औरतें मारी जा सकती हैं, धर्म के नाम पर खून हो सकता है? निश्चित ही धर्म के नाम पर कुछ अंधे लोग काम कर रहे होंगे, अन्यथा धर्म के नाम पर यह सब-कुछ कैसे हो सकता है।
पिछले मनुष्य-जाति के धर्मों का इतिहास, अंधों की लड़ाइयों का इतिहास है। और हम आज भी यही पूछते चले जा रहे हैं, कैसे विश्वास करें, विश्वास करेंगे तो अंधे हो जाएंगे। विश्वास का सवाल नहीं है। उस अंधे आदमी के मित्रों में अगर मैं भी रहा होता, तो मैं उसको दूध को समझाने की कोशिश न करता। मैं उस आदमी को कहताः यह प्रश्न तुम्हारा गलत है। वह जिसके पास आंख नहीं है, वह प्रकाश, रंग और रूप के संबंध में प्रश्न करे, यह व्यर्थ है। तुम्हें इसके संबंध में प्रश्न नहीं, तुम्हें पूछना चाहिए कि मेरी आंख कैसे ठीक हो सकती है? वह तुम्हारा ठीक प्रश्न होगा, वह राइट क्वेश्चन होगा। और तब मैं तुम्हें उत्तर नहीं दूंगा, ले चलूंगा किसी चिकित्सक के पास कि तुम्हारी आंख का इलाज हो, तुम्हारी आंख का उपचार हो। जिस दिन तुम्हारी आंख ठीक हो सकेगी, उस दिन तुम जान सकोगे कि प्रकाश कैसा है, दूध कैसा है, रंग कैसे हैं, रूप कैसे हैं। उस दिन बिना किसी के समझाए तुम देख सकोगे और जब तक तुम समझाए हुए को मानोगे, तब तक तुम्हारे अनुमान बहुत असंगत, बहुत काल्पनिक, बहुत झूठे होने वाले हैं, और उन अनुमानों पर अगर तुम रुक गए, तो शायद तुम्हारी अपनी आंख खोलने की जो पीड़ा और खोज होनी चाहिए, वह समाप्त हो जाएगी।
वह अंधा आदमी नाच उठा था खुशी से कि मैंने जान लिया है कि दूध कैसा है। अब, अब उसे आंख की खोज का कोई सवाल ही न रहा। बिना आंख के ही दूध जान लिया गया है। अगर उसे यह अनुभव होता कि बिना आंख के दूध नहीं जाना जा सकता, तो शायद यह पीड़ा कि मैं जानना चाहता हूं, उसे अपनी आंख की चिकित्सा में ले गई होती।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि विश्वास मत करें, ताकि आप अपनी आत्मा की चिकित्सा में जा सकें। विश्वास मत करें, ताकि आप अपनी भीतर की आंखों को खोलने के प्रति आतुर हो सकें, व्याकुल हो सकें। जो विश्वास कर लेगा, उसकी व्याकुलता समाप्त हो जाएगी। इसलिए मैंने कहा कि विश्वास अंधा है। विश्वास नहीं, चाहिए अत्यंत सतेज विचार, चाहिए अत्यंत जागरूक चिंतन, चाहिए खोज, अनुसंधान, चाहिए इनक्वायरी। और ये जब किसी व्यक्ति में पैदा होनी शुरू होती हैं, तो उसके भीतर एक आलोक का रास्ता धीरे-धीरे खुलने लगता है।

लेकिन किसी मित्र ने पूछा है कि सारे धर्मगुरु, धर्मशास्त्र तो यही कहते हैं कि विश्वास करो। और आप यह कैसी अनूठी बात कह रहे हैं कि विश्वास नहीं करना चाहिए?
निश्चित ही, विश्वास से कुछ हित होगा तभी तो वे ऐसा कहते हैं, उन्होंने पूछा है। हित है, आपका नहीं धर्मगुरुओं का। स्वार्थ है, आपका नहीं धर्मगुरुओं का।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा विचारक एक छोटे से गांव में रहता था। वह एक दिन सुबह-सुबह अपने गांव के तेली के पास तेल खरीदने गया था। तेली की दुकान लगी थी, तेली अपनी दुकान पर बैठा तेल बेचता था। उस विचारक ने तेल देने को कहा। तेल तोला जाने लगा। तभी उसने देखा कि पीछे तेली का बैल दुकान के पीछे ही कोल्हू को चला रहा है। तेल पेर रहा है। लेकिन कोई उसे चलाने वाला नहीं था, बैल खुद ही चल रहा था। उसने उस तेली को पूछाः बड़े आश्चर्य की बात है, आदमी जब बैल को जबरदस्ती चलाता है, तब वह चलता है। अरे आदमी को ही कोई जबरदस्ती न चलाए, तो आदमी नहीं चलता। तो यह तो बैल है, यह अपने आप चल रहा है स्वेच्छा से। बड़ी खूबी की बात है। ऐसा बैल मैंने कभी नहीं देखा। वह तेली हंसा और उसने कहा कि यह स्वेच्छा से नहीं चल रहा है, इसमें तरकीब काम कर रही है। देखते नहीं हैं, मैंने उसकी आंखें बंद कर रखी हैं, बैल की दोनों आंखों पर पट्टी थी। तेली ने कहाः बैल को दिखाई नहीं पड़ रहा है कि पीछे कोई है या नहीं। वह मान रहा है कि कोई पीछे है।
लेकिन उस विचारक ने कहा कि कभी रुक कर भी तो जांच कर सकता है कि कोई पीछे है या नहीं, कभी जांच नहीं करता रुक कर? बड़ा विश्वासी बैल है, बड़ा श्रद्धालु बैल है। उसे तेली ने कहाः नहीं, श्रद्धा का सवाल नहीं है, देखते नहीं गले में घंटी बांध रखी है मैंने। चलता रहता है, तो घंटी बजती रहती है, मुझे आवा.ज सुनाई पड़ती रहती है। जब खड़ा होता है। मैं फौरन जाकर फिर उसे हांक देता हूं, उसको खयाल बना रहता है कि पीछे कोई है और घंटी बजती है, तो मुझे पता रहता है कि बैल चल रहा है।
उस विचारक ने कहाः अरे कभी ऐसा नहीं कर सकता बैल कि खड़ा हो जाए, गर्दन हिलाता रहे, ताकि घंटी बजती रहे और तुमको धोखा दे दे। उस तेली ने कहा: महाशय आप जल्दी दुकान से जाइए, कहीं आपकी बातें बैल न सुन ले। ये बड़ी खतरनाक बातें हैं। मेरी सारी दुकान बंद करवाने का इरादा करते हैं आप। किसी तरह अपनी रोटी-रोजी चला लेता हूं, तुमसे मेरी क्या दुश्मनी है। क्यों ऐसी बातें करते हो। आइंदा किसी और दुकान से तेल लेना, यहां मत आना। क्या भरोसा बैल सुन ले, तो सब मुश्किल हो जाए।
धर्मगुरु भी आदमी को चला रहा है बहुत दिनों से। और बिल्कुल नहीं चाहता कि मेरा जैसा आदमी उसकी दुकान पर जाए और तेल खरीदे, क्योंकि उसको डर है कि मेरी बातें अगर सुन ले बैल तो बड़ी मुश्किल। आदमी का शोषण किया जा रहा है, उसकी आंख पर पट्टियां बांध कर, उसके गले में घंटियां बांध कर विश्वास की, अंधे विश्वास की। आदमी का शोषण किया जाता रहा है। निरंतर आदमी का शोषण हुआ है।
हमारे बीच जो सबसे ज्यादा चालाक और कनिंग आदमी हैं, उन्होंने बहुत पहले यह बात समझ ली कि धर्म के नाम पर आदमी का बहुत अदभुत रूप से शोषण किया जा सकता है। वे सिर्फ शोषण कर रहे हैं, इसमें उनका हित है। किस-किस भांति उन्होंने शोषण किया है, अगर यह कथा किसी दिन पूरी स्पष्ट हो जाए, तो हम घबड़ा जाएंगे। तब हमको दिखाई पड़ेगा कि शायद धर्मगुरुओं से ज्यादा अधार्मिक लोग जमीन पर और कोई नहीं रहे। वे तो निश्चित ही कहेंगे कि विश्वास करिए। लेकिन उनके कारण आपका शोषण होता तो भी ठीक था। उनके कारण ठीक-ठीक धर्म का जन्म नहीं हो पाया, जो और भी बड़ी कठिन बात है, और भी दुर्भाग्य की बात है। आदमी का शोषण भी ठीक था, कि वे आदमी का शोषण करते रहते, लेकिन उनके इस सारे उपद्रव के कारण, उनके इस सारे षड्यंत्र के कारण आदमी के जीवन में सच्चे धर्म का जन्म नहीं हो सका, क्योंकि सच्चे धर्म से उनकी इस दुकान का अंत हो जाएगा, क्योंकि सच्चा धर्म होगा विचार पर खड़ा, सच्चा धर्म होगा चिंतन की बुनियाद पर खड़ा, सच्चा धर्म होगा वैज्ञानिक, वह होगा साइंटिफिक। उसमें सुपरस्टीशन, उसमें अंधेपन, अंधविश्वास, विश्वास

इन सबके लिए कोई जगह रह जाने वाली नहीं है। इसलिए निरंतर उन पुरोहितों का हम, चाहे वह किसी धर्म के हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, चाहे वे किसी तरह के मत से संबंधित हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उनका वर्ग निरंतर विचार के विरोध में रहा है और विश्वास के पक्ष में रहा है।
जरूर उनका हित है, लेकिन आपका हित नहीं है, मनुष्यता का कोई हित नहीं है। और न ही धर्म का ही कोई हित है, इसलिए हम रोज पिछड़ते चले गए। विज्ञान तो बढ़ता गया रोज, क्योंकि विज्ञान विश्वास पर खड़ा हुआ नहीं है। विज्ञान है खड़ा हुआ विचार पर, चिंतन पर, मनन पर। विज्ञान तो रोज गति करता गया और धर्म रोज पिछड़ता चला गया। क्यों? अगर धर्म भी विचार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर खड़ा होता, तो धर्म तो परम विज्ञान बन जाता, वह तो सुप्रीम विज्ञान बन गया होता कभी का। जीवन में उसकी वैज्ञानिकता हरेक के हृदय में पहुंच गई होती। लेकिन नहीं, एक वर्ग है शोषकों का, जो उसे नहीं पहुंचने देगा, नहीं वैज्ञानिक बनने देगा। क्योंकि उसका वैज्ञानिक बनना, उनकी मौत के सिवाय और कुछ भी नहीं है।
एक बहुत अदभुत घटना हुई है। दोस्तोवस्की एक रूसी लेखक था। उसने अपनी किताब में अठारह सौ वर्ष बाद कल्पना की है कि क्राइस्ट को स्वर्ग में रहते-रहते अठारह सौ वर्ष हो गए और तब उन्हें खयाल आया कि अब मैं एक बार जाकर जमीन पर फिर से देखूं, अब तो करोड़ों लोग क्रिश्चियन हो गए हैं, अब तो मेरे मानने वाले जमीन पर आधे लोग हैं, अब तो मेरा बड़े खुले हृदय से स्वागत होगा। और अब जो मैं कहूंगा, वह तो लोगों के प्राणों में पहुंच जाएगी बात। अब तो लोग मुझे सूली पर नहीं चढ़ाएंगे। अब तो राज-सिंहासन पर बिठाएंगे। आधी जमीन मेरी है। जमीन पर हर गांव में मेरे चर्च हैं, हर गांव में मेरा पादरी है, मेरा पुरोहित, गांव-गांव में मेरा क्रॉस लगा हुआ है। अब तो मैंने जमीन जीत ली है। मैं जाऊं एक दफा देखूं। पिछली बार तो जब गया था, तो बहुत बुरा स्वागत हुआ था, पत्थर मारे लोगों ने और अंत में मेरी हत्या कर दी। लेकिन तब पुरोहित दूसरों के थे, यहूदी थे, अब तो अपने पुरोहित हैं।
क्राइस्ट जेरुसलम के बाजार में एक दिन सुबह उतरे। रविवार का दिन था
और लोग चर्च से घर लौट रहे थे। वे झाड़ के नीचे खड़े हो गए। लोग भी उधर से निकले, तो उन्होंने देखा, अरे यह कौन आदमी एक्टिंग कर रहा है क्राइस्ट की! यह कौन आदमी अभिनय कर रहा है, बिल्कुल क्राइस्ट जैसा मालूम पड़ता है। लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई और उन्होंने कहा: महानुभाव, कौन हो तुम, बड़ा गजब किया है, बिल्कुल शकल मिला ली है, बिल्कुल वैसे मालूम पड़ते हो? क्राइस्ट हंसे और उन्होंने कहाः तुम भूलते हो, मैं वही हूं। लोग हंसे और उन्होंने कहाः ऐसी गलती मत करना, नहीं तो पादरी अगर सुन लेगा, तो मुसीबत में पड़ जाओगे। और पीछे से महापुरोहित आ गया और उसने कहा: यह कौन बदमाश यहां गड़बड़ कर रहा है, नीचे उतरो...
... और न बचने चाहिए उनके कारण मनुष्य, मनुष्य से टूट गया है और जो बात मनुष्य को मनुष्य से तोड़ देती हो, क्या वह बात मनुष्य को प्रभु से जोड़ सकती है। जो मनुष्य को मनुष्य से भी नहीं जोड़ पाती, वह मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकेगी। नहीं, यह कोई संभावना नहीं है।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या मंदिर, पूजा, प्रार्थना-गृह इनकी क्या कोई जरूरत नहीं है? क्या धर्म के लिए यह अनिवार्य नहीं है?
एक छोटी सी कहानी कहूं तो शायद खयाल आ सके।
एक रात एक चर्च के द्वार पर एक आदमी ने दस्तक दी। चर्च के पुरोहित ने द्वार खोला। देखा एक नीग्रो, एक काला आदमी खड़ा हुआ है। देखते ही उसके मन में आग लग गई। वह चर्च सफेद लोगों का चर्च था। वहां सफेद चमड़ी के लोगों को भीतर आने की आज्ञा थी। काला आदमी कैसे वहां आ गया? कोई चर्च, कोई मंदिर सभी आदमियों के लिए नहीं है। किन्हीं आदमियों के लिए है, बाकी के लिए द्वार बंद है। पुराने दिन होते, तो उसने कहा होता, शूद्र, हट यहां से, तेरी छाया पड़ गई, साफ कर सीढ़ियों को, अपवित्र हो गई हैं मंदिर की सीढ़ियां तेरे कारण। धर्मगुरु ने बहुत दिनों बहुत बार ऐसी भाषा बोली है कि जिसके भीतर परमात्मा छिपा है, उसको भी अपवित्र और शूद्र कहा है और निरंतर वह ग्रंथों में यह लिखता रहा है कि सबके भीतर परमात्मा है। लेकिन काली चमड़ी के भीतर,

गरीब आदमी के भीतर, शूद्र के भीतर, उसके भीतर परमात्मा नहीं है, वह तो अपवित्रता की खान है। लेकिन जमाना बदल गया है, अब ऐसी भाषा नहीं बोली जा सकती।
लेकिन आदमियों के दिल थोड़े ही बदले हैं। भाषा बदल जाती है, तरकीबें वही हैं, उस पादरी ने कहाः मेरे मित्र, झूठा था यह सब। मित्रता उसके मन में जरा भी न थी, उस आदमी के प्रति। लेकिन कहा उसनेः मेरे मित्र! आए हो तुम मंदिर में किसलिए, परमात्मा को खोजने। लेकिन क्या तुम्हें पता है, जब तक हृदय पवित्र न हो और जब तक मन शांत न हो और जब तक प्राण मौन न हो, तब तक परमात्मा को कैसे पा सकोगे, चर्च में आना फिजूल है। जाओ, पहले मन को पवित्र करो, शांत करो फिर आना। सोचा उसने अपने मन मेंः न होगा मन पवित्र, न यह दुबारा यहां आएगा। द्वार बंद कर दिया।
वह आदमी सीधा-सादा था, वापस लौट गया। सीधा-सादा न होता, तो परमात्मा को खोजने चर्च में जाता? इतनी बड़ी दुनिया छोड़ कर चर्च में परमात्मा को खोजने जाता। सीधा-सादा आदमी होगा। लौट गया, मान गया बात। उसी दिन से मन प्रार्थनाओं से भर लिया उसने। उसी दिन से प्रतिपल रोने लगा। प्रार्थना करने लगा। हृदय को उसकी ही आतुरता से भरने लगा। एक वर्ष बीत गया, वह आदमी नहीं आया और न दिखाई पड़ा।
एक दिन चर्च के पास से निकलता पादरी ने उसे देखा। सोचा कि कहीं वह आज आ
तो नहीं रहा है, नहीं तो फिर एक मुसीबत हुई। वह सोचने लगा कि आज किस तरकीब से इसको रोकूंगा। लेकिन नहीं, वह सोचता ही रह गया, वह आदमी तो आगे निकल गया चर्च को छोड़ कर। जाते हुए उस आदमी को उसने गौर से देखा, तो हैरान हुआ। वह आदमी तो जैसे बदल गया, जैसे ट्रांसफार्म हो गया था। उसकी छाया में एक शांति आ गई, उसके आस-पास जैसे एक पवित्रता छा गई थी। उसकी आंखों में एक मौन दिखाई पड़ रहा था। उसके चेहरे पर कोई आलोक आ गया था। वह पादरी भागा। उसे रोका और कहाः मित्र, फिर तुम दुबारा आए नहीं। वह आदमी हंसने लगा और उसने कहाः मैं तो आता था, लेकिन एक गड़बड़ हो गई और मैं नहीं आ सका, और अब कभी नहीं आ सकूंगा।
क्या गड़बड़ हो गई?
तो उस आदमी ने कहाः प्रार्थनाओं में मेरे दिन बीते, माह बीते। मुझे याद भी न रहे कि कितने दिन बीत गए। और मेरा मन शांत होता गया। और एक रात जब कि मैं पूरी तरह शांत सो गया, मैंने सपने में देखा कि भगवान आए हैं और वे मुझसे पूछते हैंः तू क्यों रोता है, क्यों दीवाना हुआ जा रहा है, क्या चाहता है? तो मैंने उन भगवान से कहाः तुम्हारा वह जो चर्च है गांव में, उसमें मैं प्रवेश चाहता हूं, ताकि तुम्हारे चरणों में आ सकूं। तो वे भगवान हंसने लगे और बोलेः तू पागल है, कोई और वरदान मांग ले। यह वरदान मैं तुझे न दे सकूंगा, क्योंकि दस साल से मैं खुद ही उस चर्च में घुसने की कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी घुसने नहीं देता। वह पादरी मुझे भीतर नहीं आने देता है। मैं खुद ही हार कर थक गया हूं, तो मैं तुझे कैसे वरदान दूं, कि तू जा सकता है, मेरी ताकत के बाहर है। इस पुरोहित को छोड़ कर मेरी ताकत सब पर चल जाती है, इस पर मेरी ताकत नहीं चलती। वह मुझे घुसने नहीं देता है।
और शायद संकोचवश भगवान ने दस साल की ही यह बात कही होगी। सच्चाई तो यह
है कि आज तक किसी मंदिर में और किसी चर्च में किसी पादरी ने, किसी पुरोहित ने उसे घुसने नहीं दिया है, क्योंकि अगर परमात्मा प्रवेश कर जाए, तो फिर चर्च और मंदिर व्यवसाय के स्थान नहीं रह सकते।

जहां प्रेम है वहां व्यवसाय असंभव है। जहां परमात्मा है, वहां व्यवसाय असंभव है। और वे तो सब व्यवसाय के केंद्र बन गए हैं। तो वहां खोजने जाने की नासमझी न करें। इतनी विराट चारों तरफ जीवन की लीला है, इतना बड़ा मंदिर है, इतना बड़ा आकाश, इतने चांद-तारे हैं, इतने पौधे हैं, इतने फूल हैं, इतनी बड़ी दुनिया है, इस बड़ी दुनिया में अगर परमात्मा का सान्निध्य उपलब्ध नहीं होता, तो इस भूल में न पड़ें कि आदमी की बनाई गई चारदीवारों के बीच उसका अनुभव हो सकेगा।

मैं आपसे निवेदन करूंगा कि परमात्मा को खोजना है, तो परमात्मा के ही मंदिर में खोजें। आदमी का बनाया हुआ कोई भी मंदिर उसकी खोज में सहयोगी नहीं हो सकता। आदमी परमात्मा का मंदिर बनाएगा, यही बात पागलपन की और अहंकार की है। आदमी और परमात्मा को गढ़ेगा, मूर्तियां बनाएगा और आदमी की बनाई हुई मूर्तियां परमात्मा हो सकती हैं? आदमी इतना छोटा, इतना क्षुद्र! इतने क्षुद्र मनुष्य से क्या विराट परमात्मा का निर्माण हो सकेगा! इतने छोटे मन से, क्या उसके विराट रूप के लायक मंदिर बन सकेगा, जिसमें वह प्रवेश पा जाए? नहीं, बनाने वाले से, बनाई गई चीज बड़ी कभी नहीं हो पाती। हमेशा बनाने वाले से बनाई गई चीज छोटी होती है।
आदमी जो भी बनाता है, वह आदमी से भी छोटा है। और विराट और अनंत को उसमें कैसे प्रवेश मिल सकता है, किसी मंदिर में नहीं, आदमी के बनाए किसी मंदिर में नहीं। लेकिन एक मंदिर है, जो आदमी का बनाया हुआ नहीं है। चारों तरफ मौजूद है वह मंदिर। चारों तरफ उसके घंटे बजते हैं, उसकी ध्वनि होती है। उसके पक्षी बोलते हैं, उसके पौधे जीवंत होते हैं और उठते हैं। उसके तारों से प्रकाश झरता है, उसका सूरज है, उसका आकाश है। चारों तरफ उसका बनाया हुआ मंदिर है। उसके प्रति हम अंधे हैं और हम कहते हैं, हम मंदिर जा रहे हैं। अपने बनाए हुए मंदिर में। जो इतने विराट मंदिर का अनुभव नहीं कर पाता, वह किसी मंदिर में कभी नहीं पहुंच सकेगा। और जो उसका यहां अनुभव कर लेगा, उसके लिए फिर सारी जमीन मंदिर है, सब-कुछ मंदिर है।
धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो मंदिर जाता है, धार्मिक आदमी वह है कि वह जहां भी होता है, वहीं अनुभव करता है कि मंदिर है। धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो प्रार्थना करता है, धार्मिक आदमी वह है कि जो भी करता है, पाता है कि वह प्रार्थना है। धार्मिक आदमी वह नहीं है जो किसी मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है, धार्मिक आदमी वह है कि जो भी उसके सामने पड़ता है, उसे प्रतीत होता है कि परमात्मा है।
लेकिन हमने बहुत तरकीब निकाल ली है, सस्ती धार्मिक होने की। उठ कर सुबह मंदिर चले जाते हैं और सोचते हैं, धार्मिक हो गए। इतना सस्ता धर्म, इतना सस्ता परमात्मा, इतनी सस्ती प्रार्थना? नहीं, यह संभव नहीं है, इतने सस्ते में नहीं खरीदा जा सकता उसे। जो अपने को ही खोने को राजी होता है, वही केवल उसे पाने में समर्थ हो पाता है।
लेकिन हम तो अपने को खोने को रा.जी नहीं हैं। हम तो चार शब्द सीख लेते हैं तोतों की तरह और प्रार्थना कर लेते हैं। और सोचते हैं, बात पूरी हो गई। किसी मंत्र को दोहरा लेते हैं, किसी शास्त्र के शब्दों को दोहरा लेते हैं, और पाते हैं कि बात पूरी हो गई। नहीं, बात इतनी आसानी से पूरी नहीं हो सकती।
पूरा जीवन, पूरा प्राण, पूरी श्वास-श्वास प्रार्थनापूर्ण हो जानी चाहिए। पल-पल, प्रतिपल, सब-कुछ प्रार्थनापूर्ण हो जाना चाहिए। प्रार्थना कही गई स्तुतियों में नहीं, किए गए प्रेम में है। प्रार्थना बोले गए शब्दों में नहीं, निःशब्द हो गए मौन में है। प्रार्थना हम कर नहीं सकते, लेकिन प्रार्थना में हम हो सकते हैं। प्रार्थना कोई करने की चीज नहीं, प्रार्थना एक मनःस्थिति है, जिसमें हम हो सकते हैं।
कौन सी वह मनःस्थिति है, जिसे हम प्रार्थना कहें? यह भी पूछा किसी मित्र ने, कौन सी मनःस्थिति है, जिसे प्रार्थना कहें? कौन सी मनःस्थिति है, जिसे ध्यान कहें? कौन सी मनःस्थिति है जिसे प्रेम कहें?
कल मैंने प्रेम की चर्चा की थी, उस संबंध में पूछा है कि यह प्रेम क्या है?
दो-तीन छोटी बातें और अंत में मैं कहूंगा एक--प्रार्थना क्या है? प्रेम क्या है? परमात्मा क्या है? मेरे लिए वे तीनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं।
एक छोटी सी घटना कहूं, उससे शायद मेरी बात समझ में आ सके।
एक भिखारी सुबह-सुबह अपने द्वार से नगर की ओर भिक्षा मांगने के लिए निकला। उसने अपनी झोली में चावल के थोड़े से दाने डाल लिए थे। सभी समझदार भिखारी अपनी झोली में कुछ डाल कर घर से निकलते हैं, ताकि जिसके द्वार पर वे

खड़े हो जाएं, उसे ऐसा न लगे कि पड़ोसियों ने कुछ भी नहीं दिया है। पड़ोसियों ने कुछ दिया है, यह खयाल उनके अहंकार को चोट पहुंचाता है, वे भी कुछ देने के लिए राजी हो जाते हैं। वे अपने पड़ोसियों से पीछे नहीं हैं, वे पड़ोसियों से कम धार्मिक नहीं हैं, वे पड़ोसियों से कम दयालु नहीं हैं।
इस खयाल को पैदा करने के लिए समझदार भिखारी झोली में कुछ डाल कर ही चलते हैं। वह भी समझदार भिखारी था, कुछ डाल कर चला। जैसे ही राजपथ पर आया, सुबह का सूरज निकलता था, सुबह की ठंडी हवाएं, सूरज की नई किरणें। राजपथ पर आते ही उसे दिखाई पड़ा, दूर से राजा का स्वर्ण-रथ चमकता हुआ चला आ रहा था। हृदय भर गया खुशी से। अब तक राजा के सामने कभी भिक्षा नहीं मांगी थी। गया था राजद्वार पर, लेकिन द्वारपाल वहीं से भगा देते थे। कौन भीतर घुसने देता, राजा तक कौन पहुंचने देता। आज तो राह पर ही राजा मिल गया है। तो राह छोड़ कर झोली फैला देगा।
हो सकता है, आने वाली पीढ़ियों तक के लिए मुझे भिक्षा मांगने की जरूरत
न रह जाए। राजा कुछ भी देगा, वह मेरे लिए तो बहुत हो जाएगा। ऐसे सपने बांधने लगा कि राजा क्या देगा, क्या नहीं देगा। झोपड़े की जगह महल बनाने लगा। हम सभी बनाते हैं। वह भी साधारण मनुष्य था। सोचने लगा कल्पनाओं में कि राजा यह देगा और यह ऐसा होगा। और सोचते-सोचते सपनों में खड़ा था वह, कि राजा का रथ सामने आकर ठिठक कर खड़ा हो गया। इसके पहले कि वह झोली फैलाता, राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली उस भिखारी के सामने फैला दी। कभी-कभी जीवन में ऐसा मजाक भी हो जाता है कि राजा भी एक भिखारी के सामने भीख मांगने लगता है। और उस राजा ने कहाः ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर मैं आज सुबह से जाकर भिक्षा मांग लूं, इतनी दीनता करूं, इतनी विनम्रता दिखाऊं कि भीख मांग लूं; जो पहला आदमी मुझे मिले, उससे भीख मांग लूं, तो शायद देश पर जो आने वाली विपत्ति है, पड़ोसी राज्य हमला करने को है, वह शायद टल जाए। इसलिए मैं भीख मांगने को हूं, तुम्हीं पहले आदमी हो, तो दो मुझे कुछ।
भिखारी का सोच सकते हैं क्या हो गया होगा हाल, सारे सपने तो मिट्टी में मिल गए। पाने की तो बात अलग, देने का सवाल खड़ा हो गया। और उस भिखारी ने जीवन में कभी दिया न था, हमेशा लिया था। देने की कोई आदत न थी, कोई साहस न था। मांगने-मांगने की कामना थी, मांगने-मांगने की आदत थी। खड़ा रह गया, हाथ हिलते न थे। राजा ने कहा: जल्दी करो, समय बीता जाता है और मुझे जाना है। कुछ भी दे दो। और देखो राष्ट्र पर आती विपत्ति का खयाल करो, इनकार मत कर देना, मना मत कर देना।
बड़ी मुश्किल में पड़ गया होगा वह भिखारी। झोली में हाथ डालता था, मुट्ठी बांधता था चावलों की, पर छोड़ देता था। एक मुट्ठी चावल व्यर्थ चले जाने को थे, फिर किसी भांति हिम्मत कर उसने मुट्ठी बांधी, एक चावल निकाल कर लाया और राजा की झोली में डाल दिया। आधा चावल करना उतनी जल्दी संभव न था, इसलिए एक ही उसने डाल दिया। राजा बैठा रथ पर चला गया, धूल उड़ती रह गई, भिखारी रोता रह गया। दिन भर भीख मांगी, सांझ लौटा बहुत उदास था। आज झोली बहुत भरी थी, बहुत भिक्षा मिली थी। लेकिन खुशी इसकी न थी कि जो झोली भर गई थी, दुख इसका था कि एक चावल छूट गया था, खो गया था।
हम सबकी भी वैसी ही सोचने की दशा है, जो हमें मिलता है, उसका हमें खयाल नहीं रहता, जो नहीं मिल पाता या छूट जाता है, वह स्मरण में रह जाता है। वह रोता हुआ घर लौटा, सांझ पत्नी ने कहाः इतने उदास, झोली इतनी भरी है, खुश हो जाओ, आनंदित हो जाओ। लेकिन वह बोलाः कैसे खुश हो जाऊं, कैसे आनंदित हो जाऊं! एक चावल का दाना और हो सकता था, जो नहीं है। खाली है झोली, एक चावल का दाना कम है वहां। उसकी पत्नी कुछ समझ न सकी, झोली खोली पत्नी ने, सारे चावल के दाने नीचे बिखर गए। भिखारी तो छाती पीट कर रोने लगा। अब तक तो धीरे-धीरे मन में रोता था, अब छाती पीट कर चिल्लाने लगा, रोने लगा। झोली खोलते ही दिखाई पड़ा, एक चावल का दाना सोने का हो गया है। तब वह छाती पीट कर रोने लगा कि मैंने सारे चावल के दाने क्यों न दे दिए। वे सब सोने के हो जाते। लेकिन अवसर बीत गया और अब कुछ भी नहीं हो सकता था सिवाय इसके कि वह रोता।
मुझे पता नहीं कि यह कहानी कहां तक सच है। लेकिन आदमी की जिंदगी को जितना मैं समझता जाता हूं, पाता हूं, यह कहानी सच होनी ही चाहिए, क्योंकि

दिखाई ही पड़ता है कि जो आदमी अपने जीवन में प्रेम से जितना दे देता है, बांट देता है, उसका जीवन उतना ही स्वर्ण का हो जाता है। और जो आदमी जितना रोक लेता है, उतना ही मिट्टी हो जाता है आखिर में।
प्रेम है दान स्वयं का, बिना शर्त दान, अनकंडीशनल। हम जितना अपने को
दे सकें और बांट सकें, जितने बिना शर्त अपने को समर्पित कर सकें और छोड़ सकें चारों तरफ, जो विराट जगत है सबमें, उसके प्रति हम जितने प्रेमपूर्ण दान से भर सकें, उतने ही हम प्रार्थना में प्रविष्ट हो जाते हैं। प्रार्थना आत्मदान है, स्तुति नहीं है। और आत्मदान से जिस हृदय की प्रार्थना उठती है, वह हृदय परमात्मा के स्वर्ण से भर जाता है।
कैसे यह प्रार्थना उठे और कैसे यह जीवन स्वर्णमय हो जाए, जो बिल्कुल मिट्टी है, वह कैसे स्वर्ण बन जाए, उसकी बात मैं कल सुबह आपसे करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए अत्यंत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का दर्शन
तीसरा प्रवचन

परिस्थिति नहीं मनःस्थिति

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं अत्यंत आनंदित हूं कि अपने हृदय की थोड़ी सी बातें आपसे कह सकूंगा। एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करूंगा।
बहुत वर्षों पहले, यूनान में एक बादशाह बीमार पड़ा। उसका जितना इलाज हुआ, बीमारी बढ़ती गई। बीमारी उस जगह पहुंच गई, जहां कि बादशाह का मरना करीब-करीब तय हो गया। मरने की प्रतीक्षा शुरू हो गई। महल उदास हो गए और राजधानी फीकी पड़ गई। आज या कल, कल या परसों बादशाह मर जाएगा, इसकी संभावना, इसकी उदासी ने पूरी राजधानी को घेर लिया। लेकिन तभी गांव में एक फकीर आया। और राजमहल तक यह खबर पहुंची कि एक फकीर गांव में आ गया है, जिसके बावत कहा जाता है कि वह मुर्दों को भी छू दे तो वे जी जाएं, तो राजा तो अभी जीवित है, अगर उस फकीर की कृपा हो जाए, तो राजा ठीक हो सकता है।
राजा जो कि महीनों से बिस्तर पर पड़ा था और उठ भी नहीं सकता था, वह उठ कर बैठ गया और उसने कहाः जल्दी उस फकीर को बुलाओ। वह फकीर बुलाया गया और उस फकीर ने आकर कहाः इस राजा को कोई भी ऐसी बीमारी नहीं है कि यह मर जाए। एक छोटा सा इलाज इसे ठीक कर सकेगा, इलाज का इंतजाम करो। उसके वजीरों ने कहाः कोई भी इलाज हो, हम व्यवस्था कर सकेंगे, लेकिन वह फकीर बोलाः इलाज बहुत छोटा सा है। तुम्हारी राजधानी में अगर कोई सुखी और समृद्ध व्यक्ति हो, तो उसके कपड़े ले आओ, उसके कपड़े लाके राजा को पहना दो, पहनते ही यह ठीक हो जाएगा। उसने कहाः यह कौन सी कठिन बात है। वे भागे गए, राजधानी समृद्ध लोगों से भरी थी। आकाश को छूने वाले भवन उस राजधानी में थे।
वे नगर के सबसे बड़े धनपति के पास गए और उन्होंने कहा कि राजा बीमार है
और मरने के कष्रीब है। और किसी फकीर ने कहा है कि कोई समृद्ध और सुखी व्यक्ति अगर अपने कपड़े दे दे, तो राजा ठीक हो जाएगा। उस धनपति ने कहाः राजा को बचाने के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं, लेकिन मेरे कपड़े काम नहीं पड़ेंगे। समृद्धि तो मेरे पास है, लेकिन सुख, सुख से मैं अपरिचित हूं, सुख मैंने कभी नहीं जाना।
फिर वे एक महल से, दूसरे महल में गए और खाली हाथ ही हर महल से वापस लौटे, क्योंकि सभी ने यह कहा कि हम अपने प्राण दे सकते हैं, लेकिन हमारे वस्त्र किसी काम के नहीं, समृद्धि हमने जानी है, लेकिन सुख, सुख से हमारा कोई परिचय नहीं हुआ। हमने जीवन भर कोशिश की है कि हम सुख को पा लें, समृद्धि तो इकट्ठी होती गई है, लेकिन सुख हमसे दूर होता चला गया है।
सांझ होने लगी और सूरज ढलने लगा। और वे वजीर निराश हो गए और उन्होंने सोचा, अब राजा को किस मुंह को ले जाकर हम दिखाएं। और तो उनमें से एक बूढ़े वजीर ने कहाः मित्रो, मैं तो पहले ही समझ गया था कि यह प्रयास असफल हो जाएगा, यह दवा नहीं मिल सकेगी, क्योंकि तुम और मैं, हम जो कि राजा के व.जीर हैं और हमारे पास अपार संपत्ति है, जब हमारे कपड़े ही देने का हमें खयाल पैदा नहीं हुआ, तभी मैं समझ गया था कि किसी और के कपड़े कैसे काम पड़ेंगे। और अगर धन वाले के कपड़े ही काम पड़ जाएंगे, तो राजा बीमार ही क्यों पड़ता। राजा के पास तो सबसे ज्यादा धन है, उसके ख़ुद के कपड़े ही काम आ जाते। तो मैं तो समझ गया था कि यह दवा नहीं मिल सकेगी और राजा मरेगा।
वे दुखी वापस लौटते थे, यह सोच कर कि अंधेरा हो जाए तो हम जाएं। नदी के किनारे महल के पास आकर उन्होंने किसी आदमी की बांसुरी की आवाज सुनी। कोई नदी के किनारे बांसुरी बजाता था। उसके स्वरों में कुछ ऐसी शांति थी, कुछ ऐसे आनंद की झलक थी कि उन्होंने सोचा, जाएं और उससे पूछ लें, हो सकता है यह आदमी सुखी हो। इसके गीत में सुख की गंध है। वे गए। और अंधेरे में उस आदमी से कहा कि मित्र, मालूम होता है, तुम सुख को उपलब्ध हो गए। तुम्हारी बांसुरी की आवाज किसी बड़े गहरे आनंद से निकलती हुई मालूम पड़ती है। क्या यह सच है। हमारा राजा बीमार है, और हमें एक सुखी और समृद्ध आदमी के वस्त्र चाहिए, तो उसे हम बचा सकेंगे। उस आदमी ने बांसुरी बजाना बंद किया और उसने

कहा कि मैं अपने प्राण दे दूं, तुम्हारे राजा को बचाने को। और निश्चित ही मैं सुख को उपलब्ध हो गया हूं, लेकिन अंधेरे में तुम देख नहीं पा रहे हो, मैं नंगा बैठा हुआ हूं मेरे पास कपड़े नहीं हैं।
दूसरे दिन सुबह वह राजा मर गया, क्योंकि उस बड़ी राजधानी में एक भी ऐसा आदमी नहीं खोजा जा सका, जो सुखी भी हो और समृद्ध भी। समृद्ध लोग थे, लेकिन वे सुखी नहीं थे। और एक सुखी आदमी मिला था, तो उसके पास वस्त्र ही नहीं थे, वह नंगा था।
यह कहानी किसी विशेष कारण से मैंने कहनी चाही है। मैं यह कहना चाहता हूं, आज तक दुनिया में कोई ऐसी संस्कृति पैदा नहीं हो सकी, जो सुख को और समृद्धि को संयुक्त कर सके। आज तक कोई ऐसा धर्म पैदा नहीं हो सका, जो मनुष्य के जीवन में सुख और समृद्धि दोनों ला सके। एक तरफ पूरब के मुल्कों ने, इस तरह की संस्कृति पैदा की, जिसने कपड़े छीन लिए, आत्मा की तलाश में शरीर को खो दिया। और पश्चिम के लोगों ने, एक ऐसी संस्कृति पैदा की, जिसने वस्त्रों की खोज में और शरीर की रक्षा में आत्मा को खो दिया। ये दोनों संस्कृतियां अधूरी और खंडित हैं। अब तक समग्र और पूर्ण संस्कृति पैदा नहीं हो सकी। इसका परिणाम यह हुआ, पूरब के लोग गरीब होते गए, भिखमंगे और नंगे होते गए। पूरब के लोग बीमार और दरिद्र होते गए, गुलाम होते गए। और पूरब से जीवन की सारी रौनक उड़ गई। पूरब एक महामारी की भांति दिखाई पड़ने लगा। एक बीमार मनुष्य का आविर्भाव पूरब में हुआ।
आत्मा की बात, परमात्मा की बात चलती रही और हम जीवन से अपनी जड़ों को खोते गए। दूसरी तरफ पश्चिम में एक समाज पैदा हुआ, जिसने धन के अंबार लगा दिए। और जिसके मकानों ने आकाश छू लिया। और जिसके वस्त्र सोने के हो गए। लेकिन मकानों की इस खोज और तलाश में मनुष्य की आत्मा मर गई। अब तक यह हुआ। और आज भी जो लोग विचार करते हैं, वे इन दो विकल्पों में से किसी एक को चुनने का खयाल करते हैं, वे या तो पूरब की बातें करते हैं या पश्चिम की। या तो वे पूरब की आत्मवादी बातें दोहराते हैं या पश्चिम की शरीरवादी। लेकिन आज भी जमीन पर कोई ऐसा विचार नहीं है, जो इन दोनों के बीच एक समन्वय का सेतु बन सके। और जो यह कह सके कि मनुष्य न तो केवल शरीर है, और न मनुष्य केवल आत्मा है। मनुष्य दोनों का एक अदभुत जोड़ है। इसलिए कोई भी संस्कृति और कोई भी धर्म, और कोई भी जीवन-व्यवस्था, जो दोनों बातों पर समवेत, साथ-साथ एक सा बल न देती हो, वह अधूरी और खंडित होगी। और अधूरी संस्कृति और धर्म से हम पीड़ित रहे हैं। क्या यह हो सकता है कि समग्र जीवन को स्वीकार करने वाला एक धर्म जन्म ले सके। क्या यह हो सकता है कि जीवन की एक ऐसी दृष्टि हो, जो भूत को और चैतन्य को, जो जड़ को और आत्मा को, दो विरोधों की तरह न देखे। बल्कि दो समवेत स्वरों की तरह देखे, जिन दोनों से जीवन का संगीत पैदा होता है।
यह मैं इसलिए निवेदन करना चाहता हूं कि जीवन की सारी विकृति इस विरोध
के कारण पैदा हुई है, जीवन की सारी विकृति, मनुष्य के जीवन को दो खंडों में तोड़ लेने से, सारा का सारा जीवन एक अजीब उलझन में पड़ गया है। जो लोग आत्मवादी अपने को समझते हैं, वे जाने-अनजाने शरीर के शत्रु हो जाते हैं। वे शरीर के साथ दमन और हिंसा करने लगते हैं और वे यह रस लेने लगते हैं कि जितना शरीर को सताएंगे जैसे उतने ही ज्यादा उन्हें आत्मा की उपलब्धि हो जाएगी। यह निपट पागलपन और नासमझी है।
शरीर की हिंसा से, शरीर के दमन से, शरीर की शत्रुता से कोई आत्मा को उपलब्ध नहीं होता। यह एक दूसरी एक्सट्रीम की प्रतिक्रिया है, रिएक्शन है। दूसरी प्रतिक्रिया यह है कि जिस व्यक्ति को भी शरीर के सुख पाने हैं, जिस व्यक्ति को भी शरीर के रस पाने हैं, उसे आत्मा को इंकार कर देना चाहिए, उसे आत्मा की हत्या कर देनी चाहिए। लोग सोचते हैं कि आत्मा की यदि हमने बातें की, परमात्मा और सत्य और धर्म का विचार किया, तो शायद हम जीवन के रस-भोग से वंचित हो जाएंगे। इसलिए आत्मा को छोड़ दो, उसकी बात को छोड़ दो, उसे भूल जाओ और शरीर को भोगो। यह एक एक्सट्रीम है, एक अति है।
दूसरी अति यह है कि आत्मा की बात करने वाला शरीर का शत्रु हो जाए, और शरीर की शत्रुता के इतने उपाय पैदा हुए हैं कि जिनका कोई हिसाब नहीं है।

सारा धर्म शरीर की शत्रुता से पीड़ित हो गया है। और सारी सभ्यता, आत्मा की शत्रुता से पीड़ित है।
इन दो अतियों ने, इन दो एक्सट्रीम ने, जीवन को इतने तनाव और इतने टेंशन
से भर दिया है कि कोई आदमी शांत नहीं हो सकता। जो शरीर का मित्र है और आत्मा का शत्रु है, वह कभी शांत नहीं हो सकता, क्योंकि जीवन के केंद्र को अस्वीकार कर रहा है। जो आत्मा का मित्र है और शरीर का शत्रु है, वह भी कभी शांत नहीं हो सकता, क्योंकि जीवन की परिधि को अस्वीकार कर रहा है। केंद्र और परिधि संयुक्त हैं, शरीर और आत्मा जीवन में संयुक्त हैं। क्या इन दोनों के साहचर्य से, इन दोनों के कोऑपरेशन पर कोई धर्म खड़ा नहीं हो सकता? अब तक जो हुआ है, वह शत्रुता है, सहयोग नहीं। अब तक जो है, वह मित्रता नहीं है और इस मित्रता के न होने के क्या-क्या फल हुए हैं, वे हमारी आंखों के सामने हैं।
धार्मिक लोग कहते हैं, शांति चाहिए। भौतिकवादी लोग भी कहते हैं, सुख चाहिए। लेकिन न तो भौतिकवादियों को सुख मिलता हुआ मालूम पड़ता है और न तथाकथित धार्मिक लोगों को शांति मिलती हुई दिखाई पड़ती है। यह मिलेगी भी नहीं, क्योंकि उन्होंने जीवन में एक अंतर्द्वंद्व, एक कांफिलिक्ट को स्वीकार कर लिया है, जीवन को दो टुकड़ों में तोड़ लिया है, जो कि अविभाजित है, जो कि इंटिग्रेटेड है, इकट्ठा है, उसको दो हिस्सों में तोड़ने से सारी तकलीफ और परेशानी पैदा हो गई। इन दोनों के बीच जब तक मध्य बिंदु नहीं खोजा जा सकेगा, तब तक हम दुनिया में शांत, स्वस्थ आदमी का निर्माण नहीं कर सकते। कनफ्यूशियस एक छोटे से गांव में गया था, उस गांव के बाहर ही, गांव के लोगों ने उसे बताया कि हमारे गांव में भी एक बहुत बड़ा विचारशील पंडित है। आप हमारे गांव में आए हैं, तो हमारे पंडित से जरूर मिलें।
कनफ्यूशियस ने कहाः मैं जरूर मिलूंगा, लेकिन क्या मैं यह जान लूं कि
उस पंडित की क्या खूबी है, जिसकी वजह से तुम आदर देते हो। उन लोगों ने कहा कि हमारा जो विचारशील आदमी है हमारे गांव का, वह किसी भी काम को करने के पहले तीन दफा विचार करता है। वह इतना विचारशील है। कनफ्यूशियस ने कहाः यह ज्यादा हो गया, जो एक दफा विचार करता है, वह कम विचार करता है, जो तीन दफे विचार करता है, वह ज्यादा विचार कर गया। ये दोनों अतियां हैं। जो दो दफे विचार करता है वह सम्यक है, वह ठीक है, वह शान्त है। कनफ्यूशियस ने कहा कि जो बीच में ठहर जाता है, एक अति से दूसरी अति पर जाना बहुत आसान है, जैसे घड़ी का पेंडुलम एक कोने से दूसरे पेंडुलम पर चला जाता है, यह बिल्कुल आसान है, लेकिन बीच में वह कभी नहीं ठहरता। दूसरी अति से पहली अति पर चला जाता है। मनुष्य का मन ऐसा है। पापी से महात्मा हो जाना बिल्कुल आसान है, लेकिन बीच में ठहरना बहुत कठिन है। महात्मा से वापस पापी हो जाना एकदम आसान है, लेकिन बीच में ठहरना बहुत कठिन है। और बीच में ठहरना सबसे बड़ी कला है, क्योंकि जीवन का सारा रहस्य मध्य में है, अतियों पर नहीं है।
एक आदमी जो भोजन का बहुत प्रेमी है, अगर बदल जाए, तो उपवास का प्रेमी
हो जाएगा, यह बहुत आसान है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। जो आदमी बहुत वस्त्रों का शौकीन है, अगर बदल जाए तो नंगा खड़ा हो जाएगा, यह कोई कठिन नहीं है, यह बिल्कुल आसान है। यह वही आदमी है, जो आदमी स्त्रियों के पीछे भागता है, अगर यह बदल जाए, तो स्त्रियों से भागने लगेगा, यह वह ही आदमी है, इसमें कोई फर्क नहीं हुआ है। दूसरी एक्सट्रीम, दूसरी अति पर, दूसरे रिएक्शन पर यह पहुंच गया है। जिस आदमी की लार टपकती है धन को देख कर, वह धन की तरफ आंख बंद कर ले, इसमें कठिनाई नहीं है।
एक बड़े महात्मा के लिए मुझे अभी किसी ने कहा है कि उनके सामने कोई पैसे ले जाए, तो वह आंख बंद कर लेते हैं। मैंने कहा कि उनको लार टपकने का डर होगा तभी, नहीं तो क्यों आंख बंद करेंगे। आंख बंद करने में लार टपकने का डर होगा, नहीं तो क्यों आंख बंद करेंगे। लार टपकती है यह भी आसान है, आंख बंद कर लेना यह भी आसान है। लेकिन आंख खुले हुए शांत रह जाना, बहुत कठिन है। घर में रह कर, गृहस्थी में रहना, एक आसानी है, गृहस्थी छोड़ कर साधु और संन्यासी हो जाना भी बिल्कुल आसान है। ये दो एक्सट्रीम हैं, ये दो अतियां हैं, लेकिन जीवन में रहते हुए संन्यस्त हो जाना बहुत कठिन है, वही मध्य है।

हमने जीवन को दो हिस्सों में तोड़ लिया है, शरीर और आत्मा के। इसलिए समाज दो हिस्सों में टूट गयाः गृहस्थ और संन्यासी।
संन्यासी वह है, जो आत्मा-आत्मा की बातें कर रहा है; गृहस्थ वह है, जो शरीर-शरीर की बातें कर रहा है। मनुष्य को तोड़ लिया है शरीर और आत्मा में। और समाज को तोड़ लिया, गृहस्थ और संन्यासी में। न तो आत्मा और शरीर टूटे हुए हैं जीवन में और न तो गृहस्थ और संन्यासी टूटा हुआ हो सकता है। ये अतियां हैं, बीमारियां हैं। एक ऐसा मनुष्य चाहिए जो गृहस्थ होते हुए, संन्यासी हो, तो हम दुनिया को धर्म से भर सकेंगे, नहीं तो नहीं भर सकेंगे। एक ऐसा मनुष्य चाहिए, जो घर में, दुकान में, धर्म में हो। हमने दो-दो हिसाब बना लिए हैं। दुकान अलग, मंदिर अलग। यह बेईमानी है। यह वह ही अति का खंडन है। हमने सोच लिया है, एक तरफ दुकान बना ली है और उसी दुकानदार ने एक तरफ मंदिर बना लिया है, जो घंटे भर के लिए मंदिर आता और तेईस घंटे दुकान में रहता है और सोचता है, हम दोनों काम संभाल रहे हैं, धर्म भी सम्हाल रहे हैं और दुकान भी सम्हाल रहे हैं।
मैं आपको कहूं, जिस दिन मकान-मकान मंदिर बनेगा, उस दिन दुनिया में धर्म आ सकेगा, उसके पहले धर्म नहीं आ सकता। जब तक रहने का मकान अलग और पूजा का मकान अलग, तब तक दुनिया में धर्म कभी नहीं आ सकता। यह जिंदगी टूटी हुई नहीं है। जिंदगी इकट्ठी है। जिंदगी बिल्कुल इकट्ठी है। और अगर आप सोचते हों कि मैं तेईस घंटे दुकान पर बैठूंगा और घर का काम करूंगा और घंटे भर के लिए मंदिर में भी आकर बैठ जाऊंगा, तो आप सोचते हैं, क्या तेईस घंटे का आदमी घंटे भर के लिए बदल जाएगा, दूसरा हो जाएगा? यह कैसे संभव है। जो आप तेईस घंटे थे, चेतना अविछिन्न है, कंटिन्युअस है। जो आप तेईस घंटे थे वही मंदिर में बैठ कर भी, आप घंटे भर में होंगे। आप माला फेरते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; आप नमोकार पढ़ते हों; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; आप गीता पढ़ते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; पढ़ने वाला व्यक्ति वही है, जो दुकान पर बैठा था। उसका चित्त वही है, उसके जीवन की दृष्टि और ढंग वही है। वह माला पढ़े, वह मंदिर में आए, वह जप करे, वह कुछ भी करे, इससे कुछ होने वाला नहीं है। नहीं होने वाला इसलिए है कि इन सारी बातों से चेतना परिवर्तित नहीं होती। लेकिन इससे एक तरकीब, एक आसानी हो जाती है और वह आसानी यह हो जाती है
कि बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने की सुविधा और मजा आ जाता है और रस आ जाता है। सस्ती तरकीबें हमने निकाल ली हैं धार्मिक होने की। मजा यह है कि जब तक पूरा जीवन धार्मिक न हो, तब तक कोई आदमी कभी धार्मिक नहीं होता। लेकिन हमने सस्ती तरकीबें निकाल ली हैं। हमने कई रास्ते निकाल लिए हैं, सस्ते नुस्खे निकाल लिए हैं। हम बैठ कर थोड़ी देर के लिए कोई तरकीब से आसन लगाके बैठ जाते हैं, कोई मंत्र पढ़ने लगते हैं, किसी प्रतिमा का ध्यान करने लगते हैं, कोई शास्त्र खोल कर बैठ जाते हैं, और सोचते हैं कि हम धार्मिक हो गए। अगर इस भांति दुनिया धार्मिक होती होती, तो अब तक सारी दुनिया धार्मिक हो जानी चाहिए थी। कितने मंदिर हैं, कितने मस्जिद हैं, कितने शिवालय, कितने गिरजे और सारे लोग उनमें जाने वाले हैं, सारे लोग उनमें आने वाले हैं, लेकिन दुनिया अधार्मिक की अधार्मिक ही है। कहीं कोई भूल है।
और वह भूल, मैं आज की सुबह आपसे निवेदन करना चाहता हूं; इस बात में है
कि हम धर्म को और जीवन को तोड़ कर देखते हैं। जब तक हम तोड़ कर देखेंगे, तब तक जीवन कभी धार्मिक नहीं हो सकता। धर्म और जीवन जिस दिन हमें एक ही चीज दिखाई पड़ेंगे, उस दिन जीवन में कोई क्रांति हो सकती है। जिस दिन मेरा उठना- बैठना, मेरा खाना-पीना, मेरा बोलना, मेरा चलना, मेरा सोना, मेरा सपना देखना भी जिस दिन मेरे लिए धर्म होगा, जिस दिन मेरा धर्म और मेरा जीवन ओतप्रोत होंगे, संयुक्त होंगे, इकट्ठे होंगे उस दिन, उस दिन मेरे जीवन में एक रूपांतरण हो सकता है, एक क्रांति हो सकती है, एक परिवर्तन हो सकता है। लेकिन यह नहीं हो पा रहा है, क्योंकि हमने दो कंपार्टमेंट बना लिए हैं। धर्म का कंपार्टमेंट अलग है और जीवन का अलग। हम कहते हैं कि हम धर्म मंदिर में जा रहे हैं, इसका मतलब क्या हुआ, आप जरूर अधार्मिक आदमी हैं, नहीं तो धर्म मंदिर में जाते कैसे।

एक मुसलमान फकीर था। वह कोई अपने जीवन के पचास वर्षों तक रोज नमाज पढ़ने मस्जिद में जाता रहा। एक भी दिन नहीं चूका। एक भी नमाज नहीं चूका। पांच दफा जाता था। कभी अपने गांव को नहीं छोड़ा उसने। कहीं जाऊं, रास्ते में मस्जिद न हो तो फिर कहां नमाज पढ़िएगा, इसलिए वह अपने गांव को छोड़ कर साठ सालों से कहीं नहीं गया था। वहीं जड़ हो गया था उसी गांव में। उसी मस्जिद से बंध गया था, जैसे सभी धार्मिक लोग बंध गए हैं, कोई किसी मंदिर से, कोई किसी मस्जिद से, ऐसा वह भी बंध गया था। जैसे सभी लोगों की धार्मिक लोगों की यात्रा बंद हो जाती है, वे हिलते-डुलते नहीं हैं, इधर-उधर नहीं जाते। ऐसे वह भी कहीं नहीं गया था। उसी गांव में ठहर गया था, जड़ हो गया था। साठ साल! बीमार हो तो भी मस्जिद गया था। कभी चूका नहीं था।
एक दिन सुबह लोगों ने देखा, वह नहीं आया। तो एक ही कारण हो सकता था कि
वह मर गया हो। और किसी कारण की कल्पना नहीं हो सकती थी। मस्जिद से लोग उठे और उसके घर गए। वह अपने सामने दरख्त के नीचे बैठा हुआ खंजड़ी बजा कर गीत गा रहा था, तो लोग बहुत हैरान हुए और उन्होंने कहाः अब बुढ़ापे में अधार्मिक हो रहे हो? जिंदगी भर नमाज पढ़ी, प्रार्थना की, अब बुढ़ापे में अधार्मिक हो रहे हो? उस आदमी ने कहाः मैं अधार्मिक था, इसलिए मस्जिद आता था। अब तो मैं जहां भी हूं, वहीं मस्जिद है। कल तक इस घर में मुझे धर्म नहीं मालूम पड़ता था और मस्जिद में धर्म मालूम पड़ता था, इसलिए मैं मस्जिद जाता था। आज तो मैं जहां हूं, वहां मंदिर है। साठ साल मैंने एक भूल की, मैंने जिंदगी को धर्म न जाना और एक छोटे से मकान में धर्म को केंद्रित कर दिया। मैंने जीवन में परमात्मा को न जाना और एक मकान में परमात्मा को बांध कर रख दिया और अब मुझे समझ में आया कि वह मेरी तरकीब थी, वह तरकीब, अधार्मिक बने रहने की तरकीब थी। घंटे भर के लिए धर्म और बाकी दिन अधर्म। एक मकान में धर्म और बाकी मकानों में धर्म नहीं। एक मकान में भगवान और बाकी जगह संसार। तो मैंने एक तरकीब बना ली थी। दोनों तलों पर जीने का मैंने एक हिसाब कर लिया था।
हम सारे लोग दो तलों पर जी रहे हैं। मेरा कहना है, जीवन में कोई तल नहीं है और दो तल मनुष्य के मन की तरकीब है, ईजाद है, टेक्नीक है, होशियारी है, कनिंगनेस है, चालाकी है कि जीवन को दो तलों में बांट दिया है।
दो तलों में बांटने से बड़ी सुविधा हो गई है, बहुत सुविधा हो गई है। मन
को समझाने के लिए रास्ता मिल गया है कि हम तो संसारी लोग हैं, हम तो गृहस्थ हैं, इसलिए जब हम संन्यासी हो जाएंगे और सब छोड़ देंगे तब धार्मिक भी हो जाएंगे। हम तो गृहस्थ हैं, हम तो संसारी हैं, इसलिए संन्यासी का हम पैर छूते हैं, क्योंकि हम तो संसारी हैं, आप संन्यासी हो, इसलिए आपका पैर छूते हैं, आदर करते हैं, जिस दिन हम भी हो जाएंगे संन्यासी, तो हमको भी आदर मिलेगा। अभी तो हम आदर देते हैं, अभी तो हम गृहस्थ हैं, अभी हमें पापी होने की सुविधा है, अधार्मिक होने की सुविधा हम स्वीकार करते हैं, क्योंकि धार्मिक का हम आदर करते हैं, हम तो कोई आदर मांगते नहीं। हम अपने को अधार्मिक होने के लिए सुविधा मानते हैं। अभी हम अधार्मिक हो सकते हैं। थोड़ा-बहुत मंदिर आ जाते हैं, थोड़ा-बहुत धर्म भी करते रहते हैं, ताकि परलोक भी न बिगड़ जाए, इस लोक को भी संभालते हैं, परलोक को भी संभालते हैं। यहां भी बड़ा मकान बना रहे हैं, थोड़ा दान-पुण्य करते हैं, स्वर्ग में भी मकान की व्यवस्था कर रहे हैं, वहां भी मरेंगे तो एक मकान मिलेगा।
ये हमारी तरकीबें हैं, और जब तक हम इन तरकीबों के प्रति सचेत न हों और उन्हें तोड़ें न और जब तक हम इस होश से न भरें कि कोई आदमी कभी अचानक संन्यासी नहीं हो सकता है। और जो अचानक संन्यासी हो जाएगा, वह धोखे की बातें हैं। वह कपड़े बदल सकता है, संन्यासी नहीं हो सकता। संन्यास जीवन में ग्रोथ है। संन्यास वैसे ही एक विकास है, जैसे कि एक बच्चा जवान होता है, जवान बूढ़ा होता है। एक बच्चा एकदम से सुबह आकर खबर नहीं कर देता कि हम जवान हो गए, एक जवान एकदम से खबर नहीं कर देता कि बूढ़े हो गए। पता भी नहीं चलता कौन कब बूढ़ा हो जाता है। किस दिन, किस क्षण में। नहीं, एक ग्रोथ है। संन्यास भी एक ग्रोथ है। लेकिन हमने जीवन में कंपार्टमेंट बना रखे हैं। तो हमारे हिस्से से एक आदमी कपड़े बदल देता है, दूसरे ढंग के कपड़े पहन लेता है, गेरुआ वस्त्र पहन लेता है, कुछ और पहन लेता है दूसरे कंपार्टमेंट में

खड़ा हो जाता है। हम कहते हैं महाराज, तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, तुम संन्यासी हो गए।
हुआ क्या है? कपड़े बदल गए हैं। अभी वही संन्यासी कपड़े बदल ले हम कहते हैं, अरे वापस भ्रष्ट हो गए, लौट आओ। अपने इस तरफ लौट आओ। आदर-वादर सब बंद कर देते हैं। सब खत्म, आदर-वादर सब गया।
यह जो सारा हमारा हिसाब है। इस हिसाब में हम चेतना के परिवर्तन पर कोई खयाल भी नहीं कर रहे हैं, कोई जरा सा भी खयाल नहीं कर रहे हैं। मैं आपसे निवेदन करता हूं, कपड़े बदलने से कोई बदलता नहीं और मकान बदल लेने से कोई धार्मिक नहीं होता। घर छोड़ कर भाग जाने से भी कोई धार्मिक नहीं होता है। धार्मिक होता है चेतना में आमूल परिवर्तन से और चेतना में आमूल परिवर्तन वहीं है, जहां जीवन है, जहां पूरा जीवन है। लेकिन चूंकि हमने जीवन को खंड-खंड में किया है।
एक अमरीकन विचारक थाइलैंड गया। थाइलैंड में एक संन्यासी की खबर फैलनी शुरू हो गई थी, कि उसके आश्रम में ध्यान बड़ी आसानी से सीख लिया जाता है। अमरीका से उड़ कर थाइलैंड आया, सोचता था कि किसी एकांत रमणीक पहाड़ के किनारे, किसी झील के पास आश्रम होगा, वहां ध्यान सिखाया जाता होगा। लेकिन जब वह उतर कर पहुंचा आश्रम में, तो देखते ही दंग रह गया, एक छोटे से गांव के बाजार में आश्रम था। बीच बाजार में, चारों तरफ दुकानें थीं, बीच में आश्रम था। वह बहुत हैरान हुआ। अंदर गया, तो देखा कि कोई सौ-पचास कुत्ते उस आश्रम के आस-पास घूम रहे थे, लड़ रहे थे, झगड़ रहे थे। वह बहुत हैरान हुआ। सांझ होने को थी, देखा सैकड़ों कौए उस आश्रम के झाड़ों पर आकर चीख-पुकार कर रहे थे, बैठ रहे थे।
वह बहुत परेशान हुआ। उसने आश्रम के गुरु को जाकर कहा कि मैं बड़ा हैरान हूं। किसी झील के किनारे, किसी पहाड़ पर एकांत में आश्रम होना चाहिए। यह क्या जगह चुनी है, यह बाजार।
उस गुरु ने कहाः बहुत मुश्किल से यह जगह मिली है। बाजार में जमीन बहुत महंगी थी, लेकिन हमने जानकर बा.जार चुना है।
और ये कुत्ते कैसे इकट्ठे हैं?
ये इकट्ठे नहीं हैं, ये हमारे आश्रम के अंतःवासी हैं, इनको हमने निमंत्रित किया है, इनको हम रोज भोजन खिलाते हैं, तब ये यहां रहते हैं, नहीं तो भाग जाते।
और ये कौए?
उन्होंने कहाः ये भी आमंत्रित हैं, रोज चावल फेंकते हैं, तब ये आते हैं। उसने कहाः यह सब क्या पागलपन है, यहां शांति कैसे मिलेगी। उस गुरु ने कहाः यहां शांत मिल जाए तो ही जीवन में शांति मिल सकती है। पहाड़ पर शांति मिल जाए वह झूठी है, क्योंकि पहाड़ के एकांत में शांत कोई भी हो सकता है। वह शांति आपकी चेतना का परिवर्तन नहीं है, वह पहाड़ की करतूत है। समुद्र के किनारे एकांत में शांति मिल सकती है, वह आपकी आत्मा का परिवर्तन नहीं है, समुद्र का प्रभाव है। घर छोड़ कर भागे हुए आदमी को शांति मिल सकती है, इसलिए नहीं कि उसकी चेतना बदल गई, बल्कि जीवन की वे परिस्थितियां वह छोड़ कर भाग गया, जहां अशांति पैदा होती थी। लेकिन अशांति पैदा नहीं होती, अशांति भीतर होती है। बाहर मौके होते हैं, जिनमें दिखाई पड़ती है। आप मौके छोड़ कर भाग सकते हैं। आपको दिखाई नहीं पड़ेगी कि अशांति है अब। लेकिन वह अशांति का मिट जाना नहीं है।
अगर मैं एक ऐसी जगह रहूं, जहां सब मुझे आदर करें और कोई मेरा अनादर न करे, तो मुझे अपमान का दुख न होता हो, तो इसमें आश्चर्य क्या है। अपमान कोई करता नहीं है। मैं एक ऐसी जगह रहूं, जहां मुझे क्रोध में लाने का कोई उपाय न करे और मुझे क्रोध न आए तो इसमें कौन सा आश्चर्य है, किसी को भी न आएगा। नहीं, लेकिन जीवन में जहां क्रोध के मौके हैं, जहां अशांति के लिए सारी व्यवस्था है, जहां चिंताएं पैदा होती हैं, जहां संताप मन को पकड़ता है, वहीं जो शांत होने की प्रक्रिया है, वहीं जो जीवन को बदल लेना है, वही धर्म है। धर्म जीवन को छोड़ कर भाग जाने का नाम नहीं है। जो भाग जाते हैं, वे कमजोर

हैं। धर्म जीवन से पलायन कर जाने का नाम नहीं है। जो पलायन कर जाते हैं, वे अपने को धोखा देते हैं।
धर्म है जीवन में संघर्ष। धर्म है जीवन के घनीभूत संग्राम में खड़ा होना और साथ ही अपने को परिवर्तित भी करना। और मैं आपसे निवेदन करूंगा, वहीं वास्तविक परिवर्तन फलित हो सकता है। क्यों? क्योंकि वही अवसर हैं अशांत होने के। धार्मिक आदमी अवसर को छोड़ कर भागता नहीं है, लेकिन अवसर के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलता है। और जो कमजोर है, वह भाग जाता है, अवसर को छोड़ कर। वह दृष्टिकोण बदलने से बच जाता है।
मैं यहां हूं, आप सारे लोग अपमानित करने लगें और गालियां देने लगें, मैं भाग जाऊं यहां से। यह भाग जाना तो बहुत आसान है। सवाल यह नहीं था कि मैं वहां से भाग जाऊं, जहां लोग गाली देते थे; सवाल यह था कि गालियों से जो मेरे मन में पीड़ा पैदा होती थी, क्या उस पीड़ा के रुख को मैं बदल सकता हूं? बुद्ध का एक शिष्य था, पूर्ण। वह जब, उसकी शिक्षा पूरी हो गई, तो बुद्ध
ने उससे कहाः अब तुम क्या करोगे। उस पूर्ण ने कहाः मैं जाऊंगा किसी इलाके में और वहां पहुंचा दूंगा आपके प्रेम के सन्देश को।
किस जगह जाओगे?
सूखा नाम की एक जगह थी। उसने कहाः मैं वहां जाऊंगा। बुद्ध ने कहाः वहां मत जाओ, वहां के लोग बहुत बुरे हैं। वहां के लोग बहुत बुरे हैं। हो सकता है कि वे तुम्हारा अपमान करें और गालियां दें, तो तुम क्या करोगे? तो उस पूर्ण ने कहाः जब वे मुझे गालियां देंगे और अपमान करेंगे तो मैं जानूंगा, कितने भले लोग हैं, मारते नहीं हैं, केवल गालियां देते हैं, मार भी तो सकते थे।
बुद्ध ने कहाः यह भी हो सकता है कि उनमें से कुछ दुष्टजन तुम्हें मारें, तुम्हें सताएं, तो तुम्हें क्या होगा। तो उस पूर्ण ने कहा कि मैं जानूंगा, कितने भले लोग हैं, सिर्फ मारते हैं, मार भी डाल सकते थे।
बुद्ध ने कहा और यह भी हो सकता है पूर्ण कि कोई तुम्हें मार ही डाले।
तो तुम्हें क्या होगा? तो उस पूर्ण ने कहाः जब वे मुझे मार ही डालेंगे, तब भी मैं जानूंगा, कितने भले लोग हैं, उस जीवन से मुझे छुटकारा दिला दिया, जिस जीवन में कोई भूल-चूक हो सकती थी।
जिस जीवन में कोई भूल-चूक हो सकती थी। यह धार्मिक व्यक्ति का दृष्टिकोण है। धार्मिक व्यक्ति का संबंध परिस्थितियों के परिवर्तन से नहीं, दृष्टिकोण के परिवर्तन से है। और हजारों साल से हम परिस्थितियां बदलने को धर्म समझ रहे हैं, इससे सारी कठिनाई हो गई। आदमी वहीं के वहीं बने रहते हैं, परिस्थितियां बदल जाती हैं और दृष्टिकोण वही का वही बना रहता है। दृष्टिकोण का परिवर्तन। संन्यास वस्त्रों में नहीं है, और न धर्म दृष्टिकोण के परिवर्तन में है। और दृष्टिकोण के परिवर्तन के लिए जरूरी है कि आप जहां हैं, वहीं दृष्टि को बदलने के प्रयास में संलग्न हों।
एक रात एक साध्वी एक छोटे से गांव में मेहमान होना चाहती थी। उसने जाकर गांव के दरवाजे खटखटाए, लेकिन लोगों ने दरवाजे बंद कर दिए। क्योंकि उस गांव के लोग दूसरे धर्म को मानते थे और साध्वी दूसरे धर्म की थी।
यह धार्मिक लोगों ने ऐसा पागलपन पैदा किया है दुनिया में कि उन्होंने आदमी-आदमी के बीच बहुत दीवालें खड़ी करवा दी हैं। और इस पागलपन को भी वे धर्म कहे जाते हैं, वे कहते हैं, हम जैन हैं तुम हिंदू हो, वह मुसलमान है। ये बीमारियों के नाम होंगे--जैन, हिंदू और मुसलमान। धर्म का इससे क्या संबंध?
धर्म तो प्राणों की एक ही अनुभूति है, उसका जैन, हिंदू, मुसलमान और ईसाई से क्या वास्ता?
स्वास्थ्य तो एक ही प्रकार का होता है, बीमारियां हजार तरह की होती हैं। धर्म एक ही तरह का होता है, अधर्म ह.जार तरह के होते हैं।
उस गांव के लोग दूसरे धर्म को मानते थे, जैसे कि दो धर्म हो सकते हैं,
वह साध्वी दूसरे धर्म की थी। उन गांव के लोगों ने दरवाजे बंद कर लिए। उन्होंने कहाः यहां नहीं ठहरो और दूसरे गांव में चली जाओ। औरत थी, रात ऊपर आ गई थी। दूसरा गांव दूर था, वह कहां जाए, लेकिन गांव के लोगों ने दरवाजे

बंद कर लिए। धार्मिक लोग, तथाकथित धार्मिक लोग बड़े कठोर हैं, ये किसी के लिए भी दरवाजा बंद कर सकते हैं। इन्होंने अपनी दुष्टता को धार्मिक नाम उढ़ा दिए हैं। और इसलिए इनको तरकीब भी मिल गई है बचने की। अपने को धार्मिक भी समझते हैं। नहीं तो दुनिया में अगर धार्मिक लोग कठोर न होते, तो कौन हिंदू-मुसलमान को लड़ाता है, कौन जैन-हिंदू को लड़ाता है, कौन हत्या करता है? बहुत कठोर हैं, इनसे ज्यादा हिंसक लोग जमीन पर दूसरे नहीं हैं। धार्मिक लोगों पर कितनी हिंसा है इसका पता है।
पांच हजार साल में जितना पाप हुआ है दुनिया में उसका आधे से ज्यादा धार्मिक लोगों ने किया है।
धार्मिक लोग बड़े अजीब हैं। इन्होंने मकान जलाए, मूर्तियां तोड़ीं, मंदिर तोड़े, मस्जिदें तोड़ीं, ये धार्मिक लोग बड़े अजीब हैं। और इनको हम समझते हैं कि बड़े सरल हृदय लोग हैं। उस गांव के लोग भी धार्मिक थे, जैसे कि सारी दुनिया में धार्मिक लोग होते हैं, उन्होंने दरवाजे बंद कर लिए। उन्होंने कहाः जाओ दूसरे धर्म की साध्वी हो, तो दूसरे गांव में डेरा डालो, यहां नहीं रुक सकतीं।
वह बेचारी औरत उस रात गांव के बाहर एक झाड़ के नीचे सो गई। अकेली औरत जंगल में झाड़ के नीचे, चेरी का कोई दरख्त था, उसके नीचे वह सो गई। रात, पूरे चांद की रात थी, कोई आधी रात उसकी नींद खुली, ऊपर पूरा चांद आ गया था और चेरी के फूल चटक-चटक कर खिलना शुरू हो गए थे। उसने आंख खोली, आकाश में छोटी बदलियां भटकती थीं। चांद था, चेरी के फूल खिलते थे। उसका हृदय आनंद से भर गया, वह उठ कर नाचने लगी और वह वापस गांव में गई।
और आधी रात में उसने लोगों के दरवाजे खटखटाए और कहाः मित्रो, दरवाजा खोलो, मैं तुम्हें धन्यवाद देने आई हूं। कहीं तुमने सांझ मुझे अपने घर में ठहरा लिया होता, तो मैं आज की रात के सौंदर्य को देखने से वंचित रह जाती। तुम बड़े प्यारे लोग हो। तुम बड़े अच्छे लोग हो, तुमने मुझे घर में नहीं ठहराया, तो मैंने रात चांद को और चेरी के फूलों को बातें करते देखा। आकाश में बादल उड़ते देखे। आज जैसी रात मैंने जीवन में कभी नहीं देखी थी। आज जैसा सौंदर्य मैंने कभी अनुभव नहीं किया था। तो मैं तुम्हें धन्यवाद देने आई हूं कि तुमने मुझे घर में नहीं ठहराया, अगर तुम ठहरा लेते तो मैं तुम्हारे घर की दीवालें जानती, आकाश का असीम सौंदर्य देखने से वंचित रह जाती।
यह धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि है। जिन लोगों ने घर से बाहर निकाल दिया था, उनके प्रति भी उसके मन में धन्यवाद का भाव उठता है। जिन लोगों ने द्वार बंद कर लिए थे, उनके प्रति भी उसके मन में धन्यवाद का भाव उठता है। जीवन है। दृष्टि का परिवर्तन है धर्म। हिंदू और मुसलमान होना धार्मिक होना नहीं है। धार्मिक होने का अर्थ है, वह जो मेरे देखने की दृष्टि है, जो एटिट्यूड है, वह जो मेरी एप्रोच है, चीजों को मैं कैसे लेता हूं, उससे धर्म का संबंध है।
एक गांव में एक सुबह एक यात्री आया। उसने अपने घोड़े को रोका। गांव के दरवाजे पर बैठे हुए एक बूढ़े आदमी से उसने पूछा कि इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं इस गांव में ठहरना चाहता हूं। इसी गांव में निवास करना चाहता हूं। उस बूढ़े आदमी ने कहाः मेरे मित्र, पहले मैं तुमसे यह पूछूंगा, तुम जिस गांव को छोड़ कर आ रहे हो, उस गांव के लोग कैसे थे? उसने कहाः उस गांव के लोगों का नाम भी न लें! उनका नाम लेते मेरे हृदय में आग की लपटें जलने लगती हैं। और मेरा बस चले तो उनकी हत्या कर दूं। उस गांव के लोग इतने बुरे हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। जमीन पर उतने बुरे लोग खोजना कठिन है। उस बूढ़े आदमी ने कहाः मित्र, घोड़े को आगे बढ़ा लो, मैं पचास साल से इस गांव में रहता हूं। इस गांव के लोग, उस गांव से भी ज्यादा बुरे हैं। तुम इस गांव के लोगों को, उस गांव से भी बदतर पाओगे। तुम आगे जाओ। तुम कोई दूसरा गांव खोज लो। यह बहुत बुरा गांव है।
वह आदमी गया भी नहीं था कि एक बैलगाड़ी आकर रुकी और एक आदमी अपने परिवार को लिए उसमें आया। और उसने भी उस बूढ़े आदमी से पूछाः मैं इस गांव में रहना चाहता हूं। इस गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने कहाः पहले मुझे

बता दो, जिस गांव से तुम आते हो, उस गांव के लोग कैसे थे? उसने कहाः उनका नाम भी मेरे हृदय को आनंद से और कृतार्थता से भर देता है। बड़े भले थे वे लोग। उन्हें छोड़ना पड़ा। इससे आंसू अब तक मेरे गीले हैं। लेकिन मजबूरी थी कुछ कि छोड़ कर आना पड़ा। इस गांव के लोग कैसे हैं? उसे बूढ़े ने कहाः आओ, तुम्हारा स्वागत है, पचास साल से इस गांव में रहता हूं, इस गांव के लोग तो उस गांव से बहुत बेहतर हैं जिस गांव को तुमने छोड़ा। तुम इस गांव के लोगों को इतना अदभुत पाओगे कि कभी छोड़ कर न जा सकोगे। आ जाओ, गांव तुम्हारा स्वागत करता है।
सवाल आपका है, सवाल गांव का नहीं है। आप कैसे हैं, गांव वैसा हो जाएगा। सवाल आपका है, सवाल गृहस्थ होने का और संन्यासी होने का नहीं है। आप कैसे हैं, वैसा घर हो जाएगा। और अगर आप गलत हैं, तो आप संन्यासी होकर भी दुनिया में गलती करते चले जाएंगे। संन्यासी कितनी गलतियां कर रहे हैं, जिसका कोई हिसाब है। संन्यासियों ने कितने मतभेद खड़े कर दिए हैं, कितने पंथ खड़े किए हैं, कोई हिसाब है? संन्यासियों ने आदमी-आदमी को कितना तोड़ दिया है कोई हिसाब है? दो संन्यासियों के अहंकार कितने खतरे ला सकते हैं, इसका कोई हिसाब है? बहुत मुश्किल हो गया है। वही बीमार गृहस्थ संन्यासी हो जाएगा तो और खतरनाक है, क्योंकि गृहस्थ था, तो कम से कम उपदेश तो नहीं करता था। संन्यासी होकर और उपदेश करेगा और न मालूम कितने लोगों के दिमाग में कीटाणु भेजेगा खतरे के, बीमारियों के।
आप, आप पर सवाल है कि आप किस गांव में रहते हैं, इसका सवाल नहीं है। आप गृहस्थ रहते हैं कि संन्यासी हो जाते हैं, इसका सवाल नहीं है। आप आप आपकी दृष्टि है क्या जीवन को देखने की। आप जीवन को कैसे लेते हैं, आनंद से लेते हैं या दुख से? अगर दुख से लेते हैं? तो आप जीवन के प्रति जो भी करेंगे, वह सुखद नहीं हो सकता। जीवन को आनंद से लें, जीवन को धन्यता से लें, ग्रेटिट्यूड, जीवन को कृतार्थता से लें। और जीवन के प्रति प्रेमपूर्ण, शांतिपूर्ण, जीवन के प्रति अत्यंत निर-अहंकार के भाव से व्यवहार करें, तो आपके भीतर धार्मिक व्यक्ति का जन्म होगा। और हो सकता है कि इस जन्म का परिणाम यह हो कि आप जहां हैं, वहीं आपके जीवन में संन्यास आ जाए। संन्यास आपका आत्मिक परिवर्तन है।
घृणा से भरा हुआ मनुष्य, भेदभाव से भरा हुआ मनुष्य, क्रोध से भरा हुआ मनुष्य, दुख और चिंता से भरा हुआ मनुष्य गृहस्थ है, चाहे वह कैसे ही कपड़े पहने हो। शांति से भरा हुआ व्यक्तित्व, आनंद जिसके हृदय में वीणा बजाता हो, कृतार्थता और धन्यता की सुगंध जिसके जीवन से निकलती हो, शांति से, प्रेम से जो जीता हो, ऐसा मनुष्य कहीं भी हो, कैसा भी हो, किन्हीं भी कपड़ों में हो, वह संन्यासी है, वह धार्मिक है।
धार्मिक होना चित्त का परिवर्तन है। ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ माइंड है। लेकिन हम अभी धर्म को और जीवन को तोड़ कर देखते हैं, इसलिए यह ट्रांसफॉर्मेशन नहीं हो पाता। इस सुबह और बहुत बातें आपसे नहीं कह सकूंगा। इतनी ही थोड़ी सी बात आपसे मुझे कहनी है, धर्म को जीवन से अलग करके मत देखना। धर्म और जीवन को एक ही जानना। धर्म को और जीवन को दो हिस्सों में खंडित मत करना। धर्म को वस्त्रों के, मकानों के परिवर्तन का नाम मत जान लेना, चेतना का परिवर्तन। और जो लोग वस्त्रों इत्यादि पर बहुत आग्रह रखते हों बदलाहट का, उन्हें शायद इस बात का पता नहीं है कि क्या बदलना है, किसको बदलना है। परिस्थिति नहीं बदलनी है, मनःस्थिति बदलनी है। परिस्थिति नहीं मनःस्थिति, बाहर नहीं भीतर और जब भीतर कोई बदल जाता है, तो बाहर सब अपने आप बदल जाता है और जब भीतर एक ज्योति जगती है शांति की और प्रेम की, तो बाहर का जीवन दूसरा हो जाता है।
वह शांति और प्रेम की ज्योति कैसे जग सकती है, वह तो आज मैं नहीं कह सकूंगा, कल सुबह, परसों सुबह दो चर्चाएं हैं, उनमें मैं उस संबंध में बात करने को हूं कि भीतर शांति की और प्रेम की ज्योति कैसे जग सकती है। उसकी बात तो मैं वहां करूंगा, किसी का खयाल हो तो वह वहां आ सकता है। अभी तो इतना ही मुझे कहना था कि अगर मनुष्य के जीवन में, मनुष्यता के जीवन में धर्म नष्ट हुआ है, तो इस कारण हुआ है कि हमने जीवन और धर्म को तोड़ दिया। हमने

संन्यासी और गृहस्थ को तोड़ दिया। हमने दो हिस्से बना दिए। हमने अखंड जीवन की धारा को टुकड़े-टुकड़े कर दिया।
जीवन की धारा है अखंड। उसमें कौन है संन्यासी, कौन है गृहस्थ, यह ऊपर
से तय नहीं किया जा सकता। यह तो प्राणों की ऊर्जा निर्णित करती है और प्राणों की ऊर्जा का परिवर्तन दृष्टिकोण का परिवर्तन है। उसको, उस दृष्टिकोण के परिवर्तन पर ध्यान दें। मुझे नहीं लगता कि हमारे खयाल में यह बात है। हमारे खयाल में बाहरी परिवर्तन हैं, भीतरी परिवर्तन नहीं हैं। लेकिन जो भीतर से बदलता है, वही केवल बदलता है। और जो बाहर से बदलाहट है, ओढ़ लेता है वह बदलता नहीं, बदलने का धोखा देता है। यह धोखा दूसरों के लिए खतरनाक नहीं है, खुद के लिए खतरनाक है। सेल्फ डिसेप्शन, यह आत्मप्रवंचना है। और मनुष्य बहुत होशियार है, अपने को धोखा देने में।
मैं प्रार्थना करूंगा कि धर्म के नाम पर अपने को धोखा मत देना। लोग दे रहे हैं, चारों तरफ चल रहा है यह, इसलिए यह प्रार्थना करता हूं। अगर धर्म के नाम पर अपने को धोखा नहीं दिया, तो हर मनुष्य अपने जीवन में एक क्रांति ला सकता है।
जो महावीर के जीवन में हुआ हो, बुद्ध के जीवन में हुआ हो या किसी के भी जीवन में हुआ हो, वह मेरे और आपके जीवन में भी हो सकता है, क्योंकि बीज रूप में हम सबकी क्षमताएं समान हैं। मेरी और महावीर की, आपकी और महावीर की क्षमताओं में भेद नहीं है। भेद हो सकता है इस बात में कि मैं अपने बीज को बीज ही बना रखता हूं, महावीर अपने बीज को विकसित कर लेते हैं और फूलों तक पहुंचा देते हैं। प्रत्येक मनुष्य के भीतर परमात्मा है जो श्रम करता है, वह उसे उपलब्ध कर लेता है। लेकिन जो धोखा देता है, वह कभी उपलब्ध नहीं कर पाता। परमात्मा करे, आत्मवंचना से वे लोग बच सकें जो अपने को धार्मिक समझते हैं। तो दुनिया दूसरी हो सकती है, मनुष्य दूसरा हो सकता है।
मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, हो सकता है, उनमें ऐसी बातें हों, जिनसे चित्त बेचैन हो और चोट लगे। चोट लगने वाली बात को भी प्रेम से सुना इसलिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। चोट मैं देना चाहता हूं, इसलिए उसके लिए क्षमा नहीं मांगूंगा। चाहता हूं कि जितनी चोट पहुंचा सकूं आपको पहुंचाऊं, क्योंकि जीवन ऐसा मृत और मुर्दा हो गया है कि कोई चोट पहुंचाए तो ही शायद थोड़े जीवन की लहर पैदा हो सकती है।

मेरी बातों को प्रेम से सुना उसे पुनः धन्यवाद। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम को स्वीकार करें।

मैं अत्यंत आनंदित हूं, क्योंकि जो मैं चाहता था वह हुआ। यह होना चाहिए। केवल वे लोग जो चुपचाप सुन लेते हैं, मुर्दा हैं। जिनके मन में विरोध उठता है, जिनके मन में यह खयाल उठता है कि शायद यह बात गलत हो, उन सभी लोगों का मेरे मन में स्वागत और आदर है, क्योंकि उन्हें मैं जीवित समझता हूं। मुनि जी ने यह कहा कि अनेकांतवाद के विरोध में हैं, उन्होंने भली बात कही। लेकिन जहां तक मेरा संबंध है, मैं खुश हूं उन मित्रों से, जिन्होंने विरोध उठाया और नाखुश हूं उन लोगों से, जो चुपचाप बैठे हैं। उसका कारण है। हजारों साल से चीजों को चुपचाप सुन लेने की वृत्ति के मैं विरोध में हूं। हजारों साल से चीजों को चुपचाप स्वीकार कर लेने और विश्वास कर लेने की वृत्ति के भी मैं विरोध में हूं। मेरी तो समझ ही यही है कि कोई कौम धीरे- धीरे मर जाती है, जो कौम चीजों को चुपचाप सुन लेती है और स्वीकार कर लेती है। विरोध विचार का लक्षण है। लेकिन विरोध नासमझी से भरा हो जाए, अशिष्ट हो जाए, असभ्य हो जाए, तो अविचार का लक्षण बन जाता है। मैं इस बात से तो खुश हूं कि आपके मन को कोई चोट पहुंचे। जैसा मैंने कहा है कि मैं तो चाहता हूं कि चोट पहुंचे। रह गई बात यह, यह मेरी भावना भी नहीं है कि मैं जो कहूं, उसे आप स्वीकार करें। मेरी तो समझ ही यही है कि जो भी मैं कहूं, आप जितना उसे अस्वीकार कर सकें उतना शुभ है, जितना उस पर संदेह कर सकें उतना शुभ है, जितना उस पर विचार और मंथन कर सकें उतना शुभ है। विश्वासों ने मनुष्य के मन में जड़ता पैदा कर दी है।

तो विश्वास के मैं पक्ष में नहीं हूं। जो बात कही जाए, उस पर श्रद्धा करें, उसके पक्ष में भी नहीं हूं। उस पर विचार करें, लेकिन अविश्वास करना विचार करना नहीं है, अश्रद्धा करना विचार करना नहीं है। विचार करने वाला व्यक्ति न तो श्रद्धा करता है और न अश्रद्धा करता है। चीजों को समझता है खुले मन से, ओपन माइंड से, समझने की कोशिश करता है, तोड़-फोड़ करता है, विश्लेषण करता है, पहचानने की कोशिश करता है, क्या सही है और क्या गलत है। तो मैंने जो भी कहा है और जो भी कहता हूं रोज, निरंतर यह निवेदन करता हूं कि मेरी बात को मान मत लेना, क्योंकि जो लोग मानने के लिए आग्रह करते हैं, वे लोग शत्रु हैं मनुष्य के। मैं तो कहता हूंः सोचना और विचारना। तो आपमें विचार पैदा हो यह तो शुभ है। दो-तीन बातें पूछी हैं, समय तो बहुत हुआ, लेकिन दो शब्द उस संबंध में आपसे कहूं।
मैंने कहाः संन्यास एक ग्रोथ है, एक विकास है। पूछा है, कि संन्यास का
यह विकास, यह ग्रोथ क्या वैसे ही है जैसे गृहस्थी का। नहीं, इन दोनों में फर्क है। गृहस्थी का जो विकास है, वह वासनापूर्ण है; संन्यास का जो विकास है, वह विवेकपूर्ण है। जो केवल वासना में ही जिएगा, वह गृहस्थ ही रह कर समाप्त हो जाएगा। उसके जीवन में संन्यास का जन्म नहीं होगा। लेकिन जो गृहस्थी का वासनापूर्ण जीवन विवेक के साथ जिएगा, वह धीरे-धीरे पाएगा, विवेक जीतता जाएगा और वासना हारती जाएगी। और एक दिन जिस दिन विवेक का पलड़ा वासना से ज्यादा भारी हो जाएगा, उस दिन वह पाएगा कि संन्यास का प्रारंभ हो गया है। जिस दिन वासना शून्य हो जाए और विवेकपूर्ण, उस दिन संन्यास पूर्ण हो जाता है।
मैंने जो कहा कि ग्रोथ है, उससे मेरा मतलब यह है, यह कोई एक क्षण में होने वाला परिवर्तन नहीं है, यह कोई रेवोल्यूशन नहीं है, एवोल्यूशन है। यह कोई क्रांति नहीं है, गृहस्थ से संन्यासी हो जाना। यह एक विकास है। क्रांति का मतलब यह कि मैं एक गृहस्थ हूं और मैंने आज तय किया है कि संन्यासी हो जाना है, तो मैं संन्यासी हो गया। मैं नहीं मानता कि ऐसे कोई संन्यासी हो सकता है।
जीवन के निरंतर अनुभवों, वासना के साथ निरंतर विवेक का संघर्ष, निरंतर वासना का हारता जाना और विवेक का जीतता जाना, यह लंबी प्रक्रिया है, यह कोई एक क्षण में होने वाली बात नहीं है। यह कोई ऐसी बात नहीं है कि एक क्षण में हो जाए, इसलिए मैंने कहा, ग्रोथ है।
उन्होंने पूछा कि क्रोध, घृणा, हिंसा इनकी भी तो ग्रोथ होती है, निश्चित। और मेरा जो इस संबंध में बुनियादी विचार है, वह यह कि, वह आपके मानने के लिए नहीं, आपके सोचने के लिए है। मेरा बुनियादी खयाल यह है कि क्रोध की क्षमता जिसके भीतर है, क्रोध की क्षमता ही विकसित और विवेक के द्वारा परिवर्तित होकर क्षमा बन जाती है। सेक्स जिनके भीतर है, सेक्स ही विवेक से संयुक्त और परिवर्तित होकर ब्रह्मचर्य बन जाता है। तो क्रोध, हिंसा, लोभ, ये सभी शक्तियां हैं, इनका अगर सम्यक विकास हो, तो आप हैरान हो जाएंगे, इनका ही सम्यक विकास इनसे बिल्कुल विपरीत दिखने वाली शक्तियों में परिवर्तित होता है।
जिस व्यक्ति के भीतर क्रोध नहीं है, उस व्यक्ति के भीतर क्षमा का कभी जन्म नहीं होगा और जिस व्यक्ति के भीतर सेक्स नहीं है, कामवासना नहीं है, उसके भीतर ब्रह्मचर्य का कभी जन्म नहीं होगा। तो ये विरोधी दिखने वाली चीजे, विरोधी नहीं हैं। मेरी दृष्टि में इनके भीतर एक इनर ग्रोथ है। अगर कोई व्यक्ति अपने क्रोध पर विवेकपूर्ण उपयोग करे और अपने क्रोध के साथ विवेक को जगाए और क्रोध से परिचित हो, तो वह पाएगा कि क्रोध क्रमशः क्षीण होता जाएगा और वही क्रोध की शक्ति क्षमा में परिवर्तित होती चली जाएगी। हम खाद ले आते हैं अपने घर में और रख लें, तो खाद दुर्गंध से भर देगा, सारे भवन को। और उसी खाद को हम बगीचे में डाल देते हैं और बीज बो देते हैं। फूल आते हैं और सुगंध से घर भर जाता है। वह जो खाद की दुर्गंध थी, वही फूलों में प्रविष्ट होकर परिवर्तित होकर सुगंध बन जाती है।
जीवन में जो बुरा है, वह शत्रु नहीं, मेरी दृष्टि में, वह केवल अभी काम में न लाया गया मित्र है। अगर हम उसे काम में ले आएं, तो वह मित्र सिद्ध

होगा। तो जीवन की सारी शक्तियां हैं--क्रोध, घृणा, सभी जीवन की शक्तियां हैं। और मैं सभी जीवन की शक्तियों का स्वागत करता हूं, क्योंकि उन्हीं शक्तियों को निश्चित विकास के द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।
धन्य हैं वे लोग, जो लोग क्रोधी हैं, क्योंकि उनके भीतर विवेक के द्वारा क्षमा का जन्म हो सकता है। क्रोध का भी स्वागत है, क्योंकि क्रोध ही परिवर्तित होकर क्षमा बनेगा, नहीं तो क्षमा क्या बनेगा। क्षमा क्या पैदा होगी आपके भीतर। तो इसलिए जीवन में मुझे तो सभी चीजों में ग्रोथ दिखाई पड़ती है।
दो तरह की ग्रोथ हैः वासना की ग्रोथ है। वासना की ग्रोथ पर आदमी गृहस्थी पर अटका रह जाता है, यह एक एक्सट्रीम है, जैसा उन्होंने पूछा कि क्या यह भी एक एक्सट्रीम है। वह गृहस्थ होकर ही अटका रह जाता है। अगर वासना के साथ जीवन की ग्रोथ हो और यदि विवेक के साथ ग्रोथ हो, तो संन्यास का जन्म होता है। लेकिन गृहस्थी के विरोध में अगर कोई संन्यास हो जाए, तो वह दूसरी एक्सट्रीम है। लेकिन अगर गृहस्थी के साथ जीवन में विवेक है तो जिस संन्यास का जन्म होता है, वह संन्यास न तो संन्यास है और न गृहस्थी है, वह मध्यबिंदु है। वही बीच का बिंदु है। अभी मुनि जी ने कहा, वीतराग शब्द का प्रयोग किया, तो अंत में मैं आपसे यह कह दूं, राग एक एक्सट्रीम है, विराग एक एक्सट्रीम है, वीतराग एक्सट्रीम नहीं है। वीतराग मध्य का बिंदु है। जहां न चित्त में राग रह जाता है और न विराग। वहां वीतरागता का फूल फलित होता है।
महावीर विरागी नहीं हैं, महावीर संन्यासी नहीं हैं, उन अर्थों में जिन अर्थों में संन्यासी हमें दिखाई पड़ता है। न महावीर गृहस्थ हैं उन अर्थों में जिस अर्थों में गृहस्थ दिखाई पड़ता है। महावीर न तो तथाकथित गृहस्थ हैं, न तथाकथित संन्यासी हैं; महावीर के चित्त में न राग है, न विराग है; महावीर वीतराग को उपलब्ध हुए हैं। वीतराग का अर्थ है मध्यबिंदु। जहां राग और विराग क्षीण हो जाते हैं और चित्त समता को, मध्य को उपलब्ध हो जाता है, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाता है। आज तो ज्यादा और बात आपसे नहीं कर सकूंगा, लेकिन धन्यवाद करता हूं उनको...
शायद यह मानते हों कि झूठ जो है वह सत्य का एक रूपांतर है या सत्य जो
है झूठ का रूपांतर है। जैसे क्रोध क्षमा का रूपांतर है।

नहीं, सत्य असत्य झूठ का रूपांतर नहीं है।

प्रश्न यह है कि जो क्रोध है, हिंसा है वह क्या अहिंसा में और क्षमा में बदलता है या दोनों समानांतर हैं या एक-दूसरे की अस्तित्वहीनता है, अगर क्षमा के साथ-साथ चलता है तो समय पर चेतावनी का और कुछ समय के बाद बदल जाता है। हम लोग ऐसा मानते हैं, जहां क्रोध है वह फिर क्षमा का अब तक विरोध है और जहां क्षमा है वह क्रोध की अत्यंत अभाव स्थिति है। वह दोनों की समता नहीं है, जैसे कि जहां सत्य है, वहां असत्य हो नहीं सकता; और जहां असत्य है, वहां सत्य नहीं रह सकता। इसी तरह जहां क्रोध है, वहां क्षमा करने वाली बात नहीं है, वह तो अभाव है, अत्यंत अभाव।

समझा आपकी बात को, क्रोध और क्षमा में जो संबंध है, वह सत्य और असत्य में नहीं है। क्रोध एक शक्ति है, असत्य एक शक्ति नहीं है। क्रोध हमारी एक शक्ति है, असत्य हमारी एक शक्ति नहीं है। सेक्स हमारी एक शक्ति है, असत्य हमारी एक शक्ति नहीं है। तो असत्य, सत्य का अभाव है, क्रोध क्षमा का अभाव नहीं है, क्रोध क्षमा की अविकसित स्थिति है, असत्य सत्य का अभाव है, एब्सेंस है। इसलिए सत्य और असत्य, इसीलिए मैंने असत्य की बात नहीं की, असत्य हमारी कोई शक्ति नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि असत्य उनमें ही होता है, जिनमें सत्य की कोई शक्ति नहीं होती। सत्य की शक्ति का अभाव है। इसलिए सत्य को मैं कोई गुण नहीं मानता, अब लम्बी बात करनी पड़ेगी।
असत्य सूचना है, लक्षण है, इस बात का कि मनुष्य के भीतर उसकी शक्तियां विकसित नहीं हो पाईं। और सत्य इस बात का लक्षण है कि मनुष्य की शक्तियां

विकसित हो गईं। असत्य और सत्य लक्षण हैं, मनुष्य के पूरे विकास के या अविकास के। क्रोध और घृणा उसकी शक्तियां हैं। जिस मनुष्य के भीतर क्रोध क्षमा में परिवर्तित हो जाता है, ट्रांसफॉर्म हो जाता है, घृणा प्रेम में ट्रांसफॉर्म हो जाता है, जिसके भीतर सारी नीचे की ची.जें, लोहे की चीजें सोना बन जाती हैं, उसके जीवन में सत्य का उदय होता है। और जिसके जीवन में क्रोध क्रोध बना रहता है, घृणा घृणा बनी रहती है, उसके जीवन में असत्य का प्रदर्शन होता है। असत्य लक्षण है कि व्यक्ति के भीतर का विकास शक्तियों में नहीं हो सका। सत्य लक्षण है कि व्यक्तित्व का विकास परिपूर्णता को उपलब्ध हुआ। और यह जो खयाल में है कि क्रोध विरोधी है क्षमा का, यह उसी तरह की बात है, जैसे कोई कहे ठंड विरोधी है गर्मी की। दीखती है विरोधी, लेकिन विरोध नहीं है। ठंड और गर्मी के बीच डिग्रीज का एक फासला है, विरोध नहीं है। किस जगह चीज ठंडी है और किस जगह गर्म है, यह कहना मुश्किल है। शून्य डिग्री से लेकर सौ डिग्री तक जहां पानी भाप बनता है, एक ग्रोथ है। शून्य डिग्री पर जो पानी है, सौ डिग्री पर जो पानी है, उनके बीच में विरोध नहीं है, कमोबेश अंतर है, रिलेटिव अंतर है, सापेक्ष अंतर है।
क्रोध और क्षमा के बीच सापेक्ष अंतर है, इसलिए क्रोध परिवर्तित हो सकता है क्षमा में। क्रोध की शक्ति रूपांतरित हो सकती है क्षमा में। घृणा रूपांतरित हो सकती है प्रेम में। दोनों शून्य हो जाएं ऐसी स्थिति भी है, जहां कि क्रोध और घृणा दोनों शून्य हो जाएं। उस स्थिति को हम जीवन की स्थिति नहीं कहते, उस स्थिति को हम जीवन से मुक्त हो जाने की स्थिति कहते हैं। उस स्थिति को हम मोक्ष कहते हैं। मोक्ष में, उस स्थिति में, उस अवस्था में न क्रोध है और न क्षमा है। क्रोध और क्षमा की दोनों शक्तियां शून्य हो जाएं, घृणा की और प्रेम की दोनों शक्तियां क्षीण हो जाएं, समाप्त हो जाएं, तो जो शून्य बचता है वह मुक्ति है, वह मोक्ष है; फिर वह जीवन नहीं है, जीवन का अतिक्रमण है। लेकिन उसके बावत बात करनी कठिन होगी।
अभी दो दिन मैं यहां हूं, किसी मित्र को खयाल हो बात करने का तो मैं उपलब्ध हूं। वे जरूर आएं और खुशी से इस संबंध में कोई शंका हो, कोई विरोध हो, तो उसे प्रकट करें। और अगली बार आऊं, तो अभी तो आपने मुझे निमंत्रण देकर बुलाया था, इसलिए थोड़ी शिष्टता रखी एक ही व्यक्ति ने, दो व्यक्ति ने कुछ बातें कहीं। अगली दफा मैं आपको निमंत्रण दूंगा कि मैं स्थानक में आता हूं, फिर शिष्टता रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी, क्योंकि मैं खुद अपनी तरफ से आऊंगा, फिर आप सबको निमंत्रण करता हूं कि सबको जो-जो विरोध सूझे, जो- जो शंका सूझे वे करें, एक जिंदा समाज होगा, जिंदा सभा होगी, हम कुछ बात करेंगे। शायद उससे कुछ समझ निकले, कोई विकसित हो तो अगली बार मैं निमंत्रण दूंगा आपको कि आ जाएं स्थानक में। इतनी ही कृपा करना कि मुझे आ जाने देना; और फिर कुछ बात कर लेंगे।

सत्य का दर्शन
चौथा प्रवचन

जीवन यानी परमात्मा

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक बहुत बड़े मंदिर में बहुत पुजारी थे। विशाल था वह मंदिर। सैकड़ों पुजारी उसमें सेवारत थे। एक रात एक पुजारी ने स्वप्न देखा कि कल संध्या जिस प्रभु की पूजा वे निरंतर करते रहे थे, वे साक्षात ही मंदिर में आने को हैं। दूसरे दिन तो उस मंदिर में उत्सव का दिन हो गया। दिन भर पुजारियों ने मंदिर को स्वच्छ किया, साफ किया। प्रभु आने को थे, उनकी तैयारी थी। संध्या तक मंदिर सज कर दुल्हन की भांति खड़ा हो गया। मंदिर के कंगूरे-कंगूरे पर दीये जल गए थे, धूप-दीप, फूल की सुगंध से मंदिर बिल्कुल नया हो उठा था। सांझ आ गई, सूरज ढल गया और प्रभु की प्रतीक्षा शुरू हो गई। पुजारी द्वार पर खड़े थे। लेकिन घड़ियां बीतने लगीं और उस प्रभु के आने का कोई, कोई भी सुराग न मिला। उसके रथ के आगमन की कोई सूचना न मिली। फिर रात गहरी होने लगी। और पुजारियों को शक हो आया। कोई कहने लगाः स्वप्न का भी क्या भरोसा है कोई? स्वप्न, स्वप्न होते हैं, स्वप्न भी कहीं सत्य हुए हैं। भूल में पड़ गए हम। व्यर्थ हमने श्रम किया। फिर वे थक गए थे दिन भर के, सो गए। दीयों का तेल चुक गया और दीये बुझ गए। धूप बुझ गई। घनघोर अंधेरे में मंदिर रोज की भांति फिर डूब गया।
लेकिन कोई आधी रात गए स्वप्न सत्य होने लगा, उस प्रभु का रथ उस मार्ग
पर मुड़ा जहां वह मंदिर था। रथ के घोड़ों की टाप सुनाई पड़ने लगी और उसके पहियों की आवाज। सोए हुए थे पुजारी, किसी एक पुजारी की टूटी नींद, लगा रथ आता है। उसने कहा चिल्ला करः उठो, जागो, शायद उसका रथ आ रहा है, सुनते नहीं आवाज सुनाई पड़ती है घोड़ों की टापों की, रथ के पहियों की। लेकिन सब सोए थे। किसी ने चिल्ला कर कहाः चुप रहो, शोर न करो, नींद न तोड़ो। कोई नहीं आता, सपने भी कभी सच हुए हैं। बादलों की गड़गड़ाहट होगी, कहां है रथ, कहां है कौन। कोई आने को नहीं है। वे फिर सो गए।
वह रथ द्वार पर आकर रुका। जिसकी प्रतीक्षा थी वह अतिथि उतरा। उसने अपने पावन चरणों से उस अंधेरे से भरे मंदिर की सीढ़ियों को पार किया। द्वार पर दस्तक दी। लेकिन पुजारी सब सोए हुए थे। फिर किसी को दस्तक सुनाई पड़ गई। उसने कहाः कोई द्वार ठोंकता है। मालूम होता है, प्रतीत होता है, जिसकी हम प्रतीक्षा में थे; वह आ गया है। लेकिन फिर किसी सोए हुए ने चुप करा दिया उसे और कहाः चुप हो जाओ, हवा के थपेड़े होंगे। कौन आता है, सपने कहीं सच होते हैं और आया हुआ अतिथि वापस लौट गया।
सुबह वे उठे, सुबह उस पूरे नगर ने देखा, वे पुजारी छातियां पीट रहे हैं
और रो रहे हैं। रथ के चिह्न सीढ़ियों तक बने थे और सीढ़ियों की धूल पर उस पावन अतिथि के पैरों के भी चिह्न थे, द्वार तक वह आया था। लेकिन जिनके द्वार वह आया था, वे सोए हुए थे, इसलिए उसे लौट जाना पड़ा।
इस छोटी सी कहानी से मैं अपनी आज की बात शुरू करना चाहता हूं।
इसलिए कि जीवन तो हमारे द्वार पर रोज आता है, उसके रथ के पहियों की आवाज भी सुनाई पड़ती है, उसके घोड़ों की टाप भी सुनाई पड़ती है। लेकिन द्वार हैं हमारे बंद और हम हैं सोए हुए। इसलिए जीते जी भी हम जीवन से परिचित नहीं हो पाते। जीवन रोज आता है प्रतिपल और लौट जाता है। द्वार हैं बंद हमारे और भीतर जो है, वह सोया हुआ है। वह जागा हुआ हो, तो शायद जीवन से हमारा सम्पर्क हो सके।
इसलिए यह केवल दिखाई पड़ता है कि हम जीते हैं, हम जीते हैं मुर्दों की भांति, जो अपनी-अपनी कब्रों में बंद हैं और सोए हुए हैं। कोई जीता नहीं है, बहुत कम लोग जीवन को उपलब्ध होते हैं। उस जीवन को उपलब्ध होने का क्या मार्ग है, किस द्वार से जीवन का अतिथि हमारे प्राणों में आएगा और हमें पुलकित कर देगा। उस संबंध में ही मुझे आज बात करनी है।
इसके पहले कि मैं उस संबंध में कुछ कहूं, यह ठीक से समझ लेना जरूरी है
कि हम किस भांति सोए हुए हैं, क्योंकि सोए हुए मनुष्य के लिए जीवन का कोई

संपर्क, कोई संस्पर्श नहीं हो सकता। सोए हुए के लिए कोई जीवन नहीं है।
जीवन है जाग्रत चित्तता में, जागे हुए में, होश में और हम सब सोए हुए हैं।
कैसे हम सोए हुए हैं, उस संबंध में थोड़ा समझेंगे, तो शायद जागने की बात भी हमारे खयाल में आ सके।
बहुत-बहुत रूप हैं हमारे सोए होने के। शायद एकदम से आश्चर्य होगा यह जान कर कि मैं आपको सोया हुआ कहूं। आप सब जागे हुए हैं, आंखें खुली हुई हैं, चलते हैं, उठते हैं, बात करते हैं और जागने का क्या अर्थ हो सकता है। नहीं, लेकिन हमारा यह जागना और हमारी ये खुली आंखें सबूत नहीं हैं सचमुच जागने के।
एक आदमी शराब पीए खड़ा हो, आंखें खुली होंगी, बातें भी करता होगा, फिर
भी हम नहीं कह सकते कि जागता है। हम कहेंगेः सोया है, बेहोश है, मूर्च्छित है। हम भी आंखें खोले खड़े हैं, लेकिन बहुत-बहुत प्रकार की शराब हमने पी रखी है, जो हमारी निद्रा बन गई है। बहुत प्रकार की बेहोशियां हैं, जिनमें हम डूबे हुए हैं, आंखें खुली हैं, चलते हैं, बोलते हैं, बात करते हैं, लेकिन भीतर सब कोई बेहोश है, सब कोई मूर्च्छित है। और उसके कारण यह सब जागरण केवल दिखाई पड़ने वाला जागरण है। वस्तुतः जागरण नहीं है।
रात हम सोते हैं, सुबह हम जागते हैं, तो यह भ्रम होता है कि नींद टूट गई। नींद टूटती नहीं। रात आकाश में तारे होते हैं, सुबह सूरज निकल आता है, तो शायद हम सोचते होंगे, तारे समाप्त हो गए। तारे समाप्त नहीं होते, केवल सूरज की रोशनी में ढंक जाते हैं। मौजूद तो होते हैं वे वहीं, जहां थे और कोई बहुत गहरे कुएं में चला जाए, अंधेरे कुएं में तो दिन में भी उसे आकाश में तारे दिखाई पड़ जाएंगे। रात हम सोते हैं और सपने देखते हैं, सुबह हम उठ जाते हैं, तो सोचते हैं कि हमारे सपने समाप्त हो गए, तो हम भूल में हैं। सपने केवल जीवन की भाग-दौड़ में छिप जाते हैं। कोई थोड़ा आंख बंद करके भीतर देखेगा, तो पाएगा कि सपने वहां मौजूद हैं और चल रहे हैं। वहां कोई सपना भीतर, वहां कोई कल्पना भीतर, वहां कोई विचारों का ऊहापोह चल रहा है। और उस ऊहापोह में दबे हुए हम जाग नहीं सकते। वह ऊहापोह बिल्कुल शांत हो जाए, शून्य हो जाए तो ही भीतर जो चेतना छिपी है, वह पूरे अर्थों में प्रकट होती और जागती है। इसलिए जब तक कोई मनुष्य सब प्रकार की बेहोशियां न छोड़ दे, सब तरह के बेहोशियों के द्वार तोड़ न दे, तब तक जाग नहीं सकता। थोड़ा समझें कि कैसे-कैसे हम बेहोश हैं।
कोई आदमी धन के लिए बेहोश हो सकता है, कोई आदमी यश के लिए बेहोश हो सकता है, कोई आदमी पद के नशे में मूर्च्छित हो सकता है और बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि कोई त्याग में भी मूर्च्छित हो सकता है, कोई धर्म में भी मूर्च्छित हो सकता है। कोई संगीत में मूर्च्छित हो सकता है। मूर्च्छा के बहुत रूप हैं, लेकिन सूत्र एक ही है, जहां भी आत्म-विस्मरण है, जहां भी सेल्फ फारगेटफुलनेस है, वहीं मूर्च्छा है, वहीं बेहोशी है, वहीं निद्रा है। जागरण का एक ही सूत्र हैः जहां सेल्फ रिमेंबरिंग है, जहां आत्म-स्मृति है।...
मैंने सुना है, एक नगर में बहुत वर्षों पहले एक बहुत बड़ा वीणावादक आया। नगर एक राजधानी थी। एक नवाब का राज्य था। उस वीणावादक ने नवाब को कहाः बजाऊंगा वीणा, लेकिन एक ही शर्त पर, मुझे सुनने वालों में से कोई सिर को न हिला सकेगा। और सिर कोई हिला, मैं वीणा बजाना उसी क्षण बंद कर दूंगा। यह मेरे बरदाश्त के बाहर है कि कोई सिर हिले। नवाब पागल था, अक्सर नवाब पागल होते ही हैं, क्योंकि जो पागल नहीं होता, वह नवाब बनने को कभी उत्सुक नहीं होता। उसने कहाः घबड़ाओ मत, जो सिर हिलेगा, तुम्हें चिंता करने की बात नहीं, घबड़ाओ मत, हिलता हुआ सिर, अलग ही करवा देंगे। तुम निश्चिंत होकर बजाओ, बीच में बंद करने की जरूरत नहीं। हमारे सिपाही मौजूद होंगे, देखते रहेंगे, जो भी सिर हिलेगा, उसे अलग ही करवा देंगे।
गांव में खबर पहुंचा दी गई, संध्या लोग सम्हल कर आएं। जो सिर हिलेगा वीणा को सुनते समय, वह कटवा दिया जाएगा। हजारों लोग आए होते वहां सुनने, आप भी गए होते, लेकिन लोग घर रुक गए, आप भी रुक गए होते। थोड़े से लोग गए। उस दिन फिर वहां बहुत भीड़ नहीं थी, उस भवन में। दो-एक सौ लोग इकट्ठे हुए थे। बड़ी

राजधानी थी, संगीत को बहुत प्रेम करने वाले थे, लेकिन जो बहुत संयमी होंगे, जो योगासन वगैरह जानते होंगे, वे वहां गए, ताकि स्थिर रह सकें, कहीं सिर भूल से भी हिल गया तो ख़तरा है।
वीणा बजी। एक घड़ी बीत गई। रात गहरी होने लगी और वैसे ही वीणा के स्वर
भी गहरे होने लगे। दो घड़ियां बीत गई होंगी, तीन घड़ियां बीत गईं, लोग ऐसे बैठे थे, जैसे मूर्तियां हों पत्थर की। श्वास भी लेने में जैसे डर रहे हों। भूल से भी सिर न हिल जाए, राजा की नंगी तलवारें लिए हुए आदमी खड़े थे। लेकिन जैसे-जैसे आधी रात होने लगी और रात की मूर्च्छा और संगीत की मूर्च्छा गहरी होने लगी, कुछ सिर हिलने शुरू हो गए। रात पूरी हो गई, वह संगीत की रात पूरी हुई। बीस आदमी पकड़ लिए गए थे, जिन्होंने सिर हिलाए थे। और राजा ने कहा उस संगीतज्ञ कोः इनके सिर अलग करवा दें। और उनसे पूछाः पागलो, मालूम था तुम्हें, फिर भी सिर क्यों हिलाए। वे लोग कहने लगे, जब तक हम मौजूद थे, हमने सिर नहीं हिलाए। जब हम मौजूद ही न रहे, तब का हमारा कोई वश नहीं है। हम जब तक होश में थे, सिर हमने नहीं हिलाए। लेकिन जब बेहोशी आ गई होगी, हम भूल गए अपने को और हो गए संगीत के साथ एक। तब के लिए हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं। सिर हिला होगा, हमने नहीं हिलाया। संगीतज्ञ से पूछाः इनके सिर अलग करवा दें। उसने कहाः नहीं। किसी कारण से किसी और कारण से मैंने यह शर्त रखी थी। कल भी मैं वीणा बजाऊंगा, लेकिन ये बीस ही लोग आ सकेंगे। कोई और नहीं आ सकेगा। बीस ही लोग आ सकेंगे। कल भी मैं वीणा बजाऊंगा। बस ये ही सुनने में समर्थ हैं। वे लोग तो छोड़ दिए गए।
लेकिन जिस बात के लिए मैंने यह घटना कहनी चाही है, वह यह है, संगीत उन्हें एक ऐसी जगह में ले गया जहां वे मौजूद नहीं थे, जहां वे मूर्च्छित थे, जहां उनकी आत्म-स्मृति खो गई थी, जहां उन्हें अपने होने का कोई बोध नहीं रह गया था। वे हिले थे, लेकिन उन्होंने खुद अपने को नहीं हिलाया था। वे जैसे यंत्र की भांति कंपित हुए थे, जैसे हवा आई थी और पत्तों को हिला गई थी। हवा आई थी और नदी की लहरों को कंपा गई थी, ऐसे ही वे हिले थे। कुछ हुआ था, कोई हवा बही थी गीत की और उसमें वे कंप गए थे। उसमें वे परवश थे, अपने वश में नहीं थे। वे मूर्च्छित थे, वे सोए हुए थे। इस सोने में जरूर उन्हें बहुत सुख मिला होगा। सोने में हमेशा सुख मिलता है, जागरण एक पीड़ा है। सपनों में कौन सुखी नहीं हो जाता, क्योंकि सपनों में हम अपने में बंद
हो जाते हैं, नींद में और बाहर के जगत से टूट जाते हैं। लेकिन जैसे ही आंख खुलती है, जीवन की समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।
और इन जीवन की समस्याओं से भागने को हम हजार-हजार रास्तों से मूर्च्छा के मार्ग खोजते हैं, कोई संगीत में खोजता होगा, कोई सेक्स में खोजता होगा, कोई सौंदर्य में खोजता होगा, कोई कहीं और। कोई धन में खोज लेता है, जीवन भर धन के लिए दौड़ता रहता है स्वयं को भूल कर। कोई पद के लिए दौड़ता रहता है, कोई मोक्ष के लिए दौड़ता रहता है। खुद को भूलने की, खुद से एस्केप की, खुद से पलायन की हमने बहुत सी विधियां खोज ली हैं। और इसलिए हम सोए ही रह जाते हैं, जाग नहीं पाते हैं।
शब्दों में, विचारों में, ज्ञान में भी कोई अपने को भूल सकता है। जीवन को, जीवन के प्रति आंखें बंद कर सकता है। अक्सर पंडित जीवन से अपरिचित रह जाते हैं। जीवन को छोड़ कर कहीं बंद हो जाते हैं, किन्हीं शास्त्रों में, शब्दों में, थोथे और मृत और वहीं खो जाते हैं, वहीं रुक जाते हैं। रवींद्रनाथ एक रात एक नौका पर सवार थे। एक बहुत बड़ा ग्रंथ किसी मित्र
ने भेंट किया था--सौंदर्यशास्त्र पर, एस्थेटिक्स पर। उसे अपने बजरे में बैठ कर दीये को जला कर पढ़ते रहे आधी रात तक। सौंदर्य क्या है, इसकी ही उसमें चर्चा और विचार था। खोते गए, खोते गए, जितना शास्त्र को पढ़ते गए उतना ही खयाल भूलता गया कि सौंदर्य क्या है! और उलझन, और उलझन, शब्द और सिद्धांत और तब ऊब कर आधी रात बंद कर दिया ग्रंथ।
आंख उठा कर देखा तो हैरान रह गए, बजरे की खिड़की के बाहर सौंदर्य मौजूद था, खड़ा था। पूरे चांद की रात थी। आकाश से चांदनी बरस रही थी। नदी की लहरें चांदी हो गई थीं। सन्नाटा और मौन था। दूर-दूर तक सब नीरव था। सौंदर्य वहां मौजूद था। तब उन्होंने सिर पीट लिया अपना, कि पागल हूं मैं! सौंदर्य द्वार

के बाहर मौजूद है और मैं किताब में खोजता हूं, जहां केवल मुर्दा शब्द हैं और कुछ भी नहीं। बंद कर दी वह किताब।
मित्र को लिखाः मित्र तुम्हारी किताब वापस पहुंचा देता हूं। सौंदर्य क्या है अगर इसे जानना है तो सौंदर्य को ही देख लूंगा, लेकिन तुम्हारे शास्त्र में खोजूं। जितनी देर तुम्हारे शास्त्र में खोजूंगा, उतनी देर सौंदर्य थपकी दे रहा है द्वार पर और मैं उससे वंचित रह जाऊंगा। बंद कर दी थी किताब, फूंक कर बुझा दिया था दीया और हैरान हो गए थे, दीये के बुझते ही जो चांदनी बाहर खड़ी थी, वह रंग-रंग से द्वार-द्वार से बजरे के भीतर आ गई थी, उसका नाच भीतर आ गया था।
और तब उन्होंने कहा था एक और सत्य भी मुझे दिखाई पड़ा कि छोटा सा दीया जला कर मैं बैठा था, तो परमात्मा की दीये की रोशनी भीतर नहीं आ पा रही थी। मेरा दीया परमात्मा के दीये का दीवाल बना हुआ था, भीतर नहीं आने देता था।
बुझा दिया था मेरा दीया, तो जो द्वार पर खड़ा था, वह भीतर आ गया।
ज्ञान का हम अपना-अपना दीया जलाए बैठे हुए हैं और चारों तरफ बरस रहा
है प्रकाश उसका। और इस छोटे से दीये की टिमटिमाती रोशनी में और धुंधियारी रोशनी में नहीं प्रवेश कर पाता है और वह बाहर खड़ा रह जाता है।
तो कुछ हैं, जो ज्ञान में खो देते हैं अपने को, शब्दों के ज्ञान में और शास्त्रों के ज्ञान में, और विस्मरण कर देते हैं उसे, जो सत्य है स्वयं के भीतर भी और स्वयं के बाहर भी। कुछ हैं, जो धन में खो देते हैं, कुछ हैं जो पद में खो देते हैं।
मैंने सुना है, एक धनपति मृत्यु की शय्या पर था। जीवन भर, जीवन भर धन
की ही दौड़ थी, धन का ही हिसाब था, कभी कुछ और न सोचा था, न समय पाया था। अपनी तरफ कभी लौट कर देखने का अवसर और अवकाश भी न मिला था। मृत्यु आ गई थी। चिकित्सकों ने कह दिया थाः बचना कठिन है। शायद घर के लोग सोचते होंगे, गीता सुना दें उसे, धर्मग्रंथ सुना दें उसे। वे धर्मग्रंथ और गीता सुनाते भी थे। सोचते होंगे, शायद यह सुनता भी है। लेकिन जिसने जीवन भर धन का जोड़ किया था, वह सुन भी कैसे सकेगा। उसके भीतर उसका ही जोड़ चलता था, उसका ही कारोबार चलता था। ऊपर से गीता चलती थी, भीतर उसका अपना हिसाब चलता था। वह सुनता नहीं था, सुन कैसे पाता, भीतर एक और ही मूर्च्छा थी। अंतिम दिन, डूबने लगा था उसका प्राण बिल्कुल, तो उसने आंख खोली और अपनी पत्नी से पूछाः मेरा बड़ा लड़का कहां है। उसकी पत्नी ने कहाः मौजूद है, आपकी बगल में बैठा है, निश्चिंत रहें। पत्नी गदगद हो आई, जीवन में कभी उसने किसी को नहीं पूछा था सिवाय पैसे के। शायद मृत्यु के इस क्षण में प्रेम उसे आ गया है, वापस लौट आया है। धन्य है यह भी भाग्य कि मृत्यु के क्षण में भी वह प्रेम दिल होकर विदा हो सकेगा। उसने पूछाः और उससे छोटा लड़का? वह भी मौजूद था और उससे छोटा वह भी। उसकी पत्नी ने कहाः निश्चिंत रहें, आपके पांचों लड़के आपके पास मौजूद हैं, आप शान्त रहें।
वह आदमी जो मरणासन्न था, उठ कर बैठ गया और बोलाः इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा है?
भूल में थी पत्नी, भूल में थी वह। यह प्रेम का स्मरण न था, पैसे का ही स्मरण था। भीतर उसके वही हिसाब चलता था। मृत्यु के क्षण में भी मूर्च्छा उसकी वही थी। मृत्यु के क्षण में भी अपना उसे स्मरण न था, स्मरण था दुकान का, वही उसकी मूर्च्छा थी। हम हजार-हजार रूपों में अपनी मूर्च्छा खोज ले सकते हैं। हजार-हजार रूपों में हम मूर्च्छित हो सकते हैं।
एक बहुत बड़े विचारक को लन्दन के पास, किसी छोटे गांव में एक चर्च में निमंत्रण मिला था बोलने का। भुलक्कड़ था बहुत, जैसा विचारक होते हैं, क्योंकि विचार में इतने मूर्च्छित होते हैं कि स्वयं का स्मरण खो जाता है। मूर्च्छा ही है वह, नशा ही है वह। सात बजे संध्या उसे पहुंच जाना था, उस चर्च में। यह एक घंटे का रास्ता था। अपने घोड़े पर सवार होकर वह घंटे भर में पहुंच सकता था। लेकिन यह सोचके कि कोई भूल-चूक हो जाए, दो घंटे पहले निकल चलना उचित है।
वह दो घंटे पहले अपने घोड़े पर चल पड़ा। पांच बजे ही घर से निकल गया, सोचा एक घंटे वहां रुक लेंगे, लेकिन समय पर पहुंच जाना उचित है। चल पड़ा

अपने घोड़े पर, चर्च के द्वार पर जाकर रुक गया, तब छह ही बजे थे। अभी सुनने आने वालों को एक घंटे की देर थी। वह घोड़े पर बैठा ही बैठा कुछ सोचने लगा। बीच में स्मरण आया, अपने सिगार को जला लेने का। सिगार मुंह में लगा कर वह जलाना चाहता था। हवा सामने से जोर से आती थी। उसने घोड़े को उलटा कर लिया। सिगार जला लिया। बैठा रहा। घोड़े ने चलना वापस शुरू कर दिया। घंटे भर बाद जब उसने घड़ी देखी, सोचा कि अब लोग आ गए होंगे, आंख उठा कर देखी, अपने घर में वापस खड़ा था।
इस आदमी को होश में कहिएगा, इस आदमी को मूर्च्छित कहिएगा या कि जाग्रत कहिएगा। यह आदमी होश में है, जागा हुआ है। नहीं, इसका चित्त बिल्कुल ही मूर्च्छित है। अपने ही खयालों में, विचारों में सोया हुआ। ऐसे हम सब बहुत-बहुत रूपों में मूर्च्छित हैं। इस मूर्च्छा के रहते जीवन से कोई संपर्क नहीं हो सकता। जीवन से संपर्क होने के लिए मूर्च्छा टूट जानी चाहिए, जागरण का द्वार हृदय पर खुलना चाहिए। कैसे खुलेगा वह द्वार, और हम द्वार को खोलने की जो भी चेष्टा करते हैं, अक्सर तो यही है कि उससे द्वार और बंद हुआ चला जाता है। अक्सर उससे द्वार और बंद होता है, खुलता नहीं। हमारी चेष्टा बहुत भ्रांत है।
तीन सूत्रों पर मैं चर्चा करूंगा, जिनसे जीवन का यह द्वार खुल सके।
पहला सूत्र, केवल वे ही लोग, केवल वे ही लोग जाग सकते हैं और आत्म-स्मरण से भर सकते हैं, जो अंधे विश्वासों और श्रद्धाओं से अपने को मुक्त कर लें। जो विचार की तीव्रता में जाग्रत हो जाएं। जो विचार के ज्वलंत प्रकाश में, विचार के आलोक में अपनी चेतना को स्थापित कर सकें, प्रतिष्ठित कर सकें, क्योंकि जो श्रद्धा में है, वह आंख बंद कर लेता है। आंख बंद कर लेने से सो जाता है। जो विश्वास करता है, वह आंख बंद कर लेता है। विश्वास का अर्थ ही है, मैं किसी को मान लेता हूं, खुद की खोज छोड़ देता हूं। जिस क्षण मैं खुद की खोज छोड़ता हूं, उसी क्षण निद्रा शुरू हो जाती है। किसी के सहारे आंख बंद करके मैं सोचता हूं, पार हो जाऊं। किसी के अनुगमन में, किसी के पीछे, किसी के अनुसरण में, किसी को अपने ऊपर ओढ़ कर मैं पार हो जाऊंगा, तो मैं भूल में हूं। मैं जितना ही पर-निर्भर होता चला जाऊंगा, उतनी ही मेरी निद्रा गहरी होती जानी है, उतना ही जागरण कठिन हो जाना है।
लेकिन हम सब हजारों वर्षों से विश्वास में दीक्षित किए गए हैं। तर्क में हमारी दीक्षा नहीं है। विचार में, सचेत चिंतन में हमारी दीक्षा नहीं है। हमारी दीक्षा है विश्वास में, श्रद्धा में। वे सुलाने वाले तत्व हैं, वे मादक द्रव्य हैं। श्रद्धा सबसे बड़ी ड्रग है, सबसे बड़ी बेहोशी की दवा है, जो आदमी ने अब तक खोजी है। उसमें सारी दुनिया सो गई है। कुछ लोगों का हित है इसमें। लोग सो जाएं तो शोषण आसान है। लोग सोए हों तो उनकी जेब खाली कर लेनी आसान है। लोग जागे हुए हों, शोषण मुश्किल है। धर्म के नाम पर शोषण है। लोग जितने सोए हुए हों उतना शोषण आसान है।
एक विचारक था एक गांव में। वह सुबह-सुबह गांव के तेली के पास तेल खरीदने गया था। एक अजीब सी बात उसने देखी तो पूछ बैठा। विचारक था, सोचता था, जो भी दिखाई पड़ जाए तो प्रश्न बन जाता था। देखा कि तेली है, तेल बेचता है। उसके पीछे ही बैल का कोल्हू है, जो चलता है और तेल पेरता है, लेकिन बैल को कोई चला नहीं रहा है, बैल अपने आप चला जाता है। उसने तेली से पूछाः मित्र, क्या तरकीब है तुम्हारी, बैल को कोई चलाने वाला नहीं है और बैल चला जाता है। बड़ा श्रद्धालु बैल मालूम होता है, बड़ा विश्वासी बैल है, इसको पता नहीं कि कोई चला भी नहीं रहा है, रुक जाए पागल क्यों चल रहा है। उस तेली ने कहाः देखते नहीं बैल की आंखें मैंने पट्टियों से बंद कर रखी हैं। बैल को अन्धा कर दिया है, उसे पता नहीं चलता कि कोई चलाने वाला पीछे है या नहीं। उस विचारक ने पूछाः लेकिन कभी-कभी ठहर करके तो पता लगा सकता है कि कोई पीछे है या नहीं। उस तेली ने कहाः मैं बैल से ज्यादा समझदार हूं, देखते नहीं बैल के गले में घंटी बांध रखी है, चलता रहता है, घंटी बजती रहती है। मुझे पता रहता है, बैल चल रहा है। खड़ा हो जाता है, घंटी बंद हो जाती है, मैं पीछे जाकर फिर हांक देता हूं। बैल को पता नहीं चल पाता है कि पीछे कोई

मौजूद नहीं है, उसे खयाल रहता है कि कोई हमेशा मौजूद है। जब भी खड़ा होता है, तब हांक शुरू हो जाती है।
विचारक ने कहाः यह नहीं कर सकता बैल कि खड़े होकर सिर को हिलाता रहे, ताकि घंटी बजे और तुम धोखे में आ जाओ। उस तेली ने कहाः महाराज, मैं हाथ जोड़ता हूं, जरा धीरे बात करें, कहीं बैल ने सुन लिया तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।
तेली बैल को नहीं सुनने देना चाहता है। धर्मपुरोहित भी विचार की बात धार्मिकों को नहीं सुनने देना चाहते हैं। ह.जारों वर्षों से उन्होंने बहुत-बहुत रूपों से आंखें बांध रखी हैं, ताकि कोई विचार की बात न सुन ले। हजार तरह के भय खड़े कर रखे हैं कि विचार किया तो नरक चले जाओगे और विश्वास किया तो स्वर्ग। विश्वास करोगे तो मार्ग मिल जाएगा और संदेह करोगे तो भटक जाओगे। हजार तरह के डर हैं और प्रलोभन हैं और आंखों पर पट्टियां हैं और आदमी चला जा रहा है। इसीलिए तो जमीन पर मंदिर बहुत, मस्जिद बहुत, गिरजे बहुत, रोज प्रार्थनाएं करने वाले लोग बहुत, भगवान की मूर्तियां बहुत, शास्त्र बहुत, सब-कुछ बहुत, लेकिन धर्म का कोई भी पता नहीं।
आदमी रोज अधार्मिक होता गया है और धर्म बढ़ते चले गए हैं। धर्म का विचार इतना है, लेकिन धर्म का जीवन, वह कहीं खोजे से भी नहीं दिखाई पड़ता। उसे कहीं भी खोजने चले जाएं, उसका कोई पता नहीं चलता कि धर्म कहां है। हां, धर्म-स्थान खोजने हों, धर्मतीर्थ खोजने हों, तो वे बहुत हैं, धर्म-पुरोहित खोजने हों, तो वे बहुत हैं। धर्मशास्त्र खोजने हों, तो बहुत हैं। लेकिन धर्म में जीवन कहां है। इतना सब धर्म का व्यापार है, लेकिन धर्म में जीवन क्यों नहीं है। नहीं है इसलिए, कि धर्म का जीवन हो सकता था सतेज, विचार होता तो!
अंधे आदमी धार्मिक नहीं हो सकते। अंधा आदमी कुछ भी नहीं हो सकता है। अंधा आदमी किसी के हाथ का खिलौना है। धर्म के नाम पर मनुष्य के भीतर जो धर्म की प्यास है, उसका अदभुत शोषण हुआ है। इससे बड़ा और कोई शोषण नहीं है। और उस शोषण की ईजाद और तरकीब रही है--आदमी विश्वास करे। क्यों करे आदमी विश्वास?
विश्वास झूठा है, सिखाया हुआ है। संदेह मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। जिज्ञासा मनुष्य की अपनी है, अपनी निजिता है। छोटा सा बच्चा भी पूछता है क्यों? उसके प्राण जानना चाहते हैं, क्यों? क्यों के पीछे छिपी है ज्ञान को पाने की एक आतुर प्यास। लेकिन धर्मपुरोहित शिक्षा सिखाता हैः क्यों मत पूछो, जो हम कहते हैं उस पर विश्वास करो। क्यों पूछना नास्तिकता है। क्यों को दबाता है और सिद्धांतों को थोपता है ऊपर से। ये सिद्धांत ऊपर से इकट्ठे हो जाते हैं, भीतर संदेह सरकता चला जाता है, छिपता चला जाता है। प्राणों के भीतर रह जाता है संदेह और विश्वास हो जाते हैं ऊपर से। ये विश्वास, बातचीत करनी हो, तो काम देते हैं। जहां जीवन का सवाल उठता है, यह विश्वास व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं, क्योंकि प्राणों के गहरे में इनकी कोई जगह नहीं है, प्राणों के गहरे में बैठा है संदेह और ऊपर से वस्त्रा हैं विश्वास के, तो दूसरे को दिखाने के काम आ जाता है, विश्वास। लेकिन अपने काम, अपने पैरों पर चलने के काम नहीं आ पाता। वहां सन्देह बैठा हुआ है।
जो आदमी विश्वास से जीवन की यात्रा शुरू करेगा, वह मौत पर संदेह को साथ लिए हुए समाप्त हो जाएगा। संदेह विश्वासों से समाप्त नहीं होता। लेकिन जो व्यक्ति ठीक-ठीक संदेह से, राइट डाउट से, सम्यक संदेह से जीवन की खोज शुरू करता है, एक दिन इस खोज के परिणाम में उस असंदिग्ध तत्व को उपलब्ध हो जाता है, जहां, जहां फिर कोई संदेह नहीं रह जाता। जहां पूरे प्राण किसी प्रकाश से आलोकित हो जाते हैं। जहां फिर पूरा जीवन आपूरित हो जाता है। संदेह से जो शुरू करता है, वह निश्चित रूप से किसी दिन निसंदिग्ध सत्य
को उपलब्ध हो जाता है; लेकिन जो विश्वास से शुरू करता है, वह कभी संदेह के पार नहीं जा पाता। इसलिए बात उलटी दिखाई पड़ेगी मेरी। मैं सच में ही वहां ले जाना चाहता हूं, जहां निस्संदेह हो जाए चेतना, जहां कोई शक न रह जाए। जहां जीवन और मेरे बीच कोई संदेह न रह जाए। हम जुड़ जाएं। लेकिन उस तक जाने का रास्ता संदेह ही है। उस तक जाने का रास्ता विश्वास नहीं है, क्योंकि

विश्वास का अर्थ है कि मैंने उसे स्वीकार कर लिया, जिसे मैंने जाना नहीं। असत्य शुरू हो गया, धोखा शुरू हो गया। और जिसके मंदिर की बुनियाद धोखे पर खड़ी हो, जिसके जीवन की पहली शिला ही धोखे पर और असत्य पर रखी हो, उस मंदिर के शिखर में, सोचते हैं आप, सत्य की पताका लहरा सकेगी? नहीं, कभी भी यह नहीं हो सकेगा।
विश्वास मनुष्य की निद्रा को गहरा करते रहे हैं। चाहिए विचार का जागरण, चाहिए तीव्र जिज्ञासा, चाहिए इनक्वायरी, चाहिए पूछताछ, चाहिए संदेह स्वस्थ, ताकि हम खोज सकें, ताकि जीवन एक प्रश्न बन सके। जब भी जीवन प्रश्न बनता है, तो प्राण खोजने को उत्सुक, व्याकुल हो जाते हैं। और हमने जीवन को बना लिया एक विश्वास, तो खोजने की सारी व्याकुलता, सारी तड़प मर गई है। और जो खोज नहीं रहा है, वह सो रहा है। जो खोज रहा है वह जागेगा, क्योंकि खोज बिना जागे नहीं हो सकती। विश्वास सोए-सोए भी किए जा सकते हैं, लेकिन खोज के लिए तो जागना ही पड़ता है।
तो खोज हो गहरी भीतर पैदा, तो जागरण उसकी छाया की भांति आना शुरू होता है।
इसलिए उसकी पहली बात, एक वैचारिक आंदोलन चाहिए व्यक्तित्व में। लेकिन वैचारिक आंदोलन का यह अर्थ नहीं है कि हम बहुत विचार इकट्ठे कर लें। बहुत विचार इकट्ठे कर लेने से कोई विचारवान नहीं हो जाता, बल्कि विचारवान न होने की जो स्थिति है, उसको छिपाने के लिए लोग दूसरों के विचार इकट्ठे कर लेते हैं। विचार बहुत और बात है, विचारों का संग्रह बहुत और बात है। विचार हैं, चेतना की क्षमता; और विचारों का संग्रह, विचारों का संग्रह है, कबाड़खाना इकट्ठा कर लेना।
दुनिया भर से विचारों को इकट्ठा करके कोई आदमी संग्रह तो कर ले सकता है, लेकिन इससे विचारवान नहीं हो जाता। विचार और बात है, विचार का संग्रह और बात है। संग्रह होता है स्मृति में। स्मृति बिल्कुल यांत्रिक, बिल्कुल मैकेनिकल चीज है।
अब तो हमने मशीनें ईजाद कर ली हैं और आदमी की स्मृति को बहुत दिन तक बहुत परेशान नहीं होना पड़ेगा। अब तो मशीनें उत्तर दे सकेंगी। अब तो मशीनें बता सकेंगी। अब आदमी की स्मृति को बहुत भार देने की जरूरत नहीं। शायद आपको पता न हो, कोरिया के युद्ध में अमरीका यह निर्णय कि चीन पर हम हमला न करें, किसी सेनापति से पूछ कर नहीं लिया, किसी युद्ध-विशेषज्ञ से पूछ कर नहीं लिया; यह तो मशीन से पूछी गई बात है, यह तो कंप्यूटर से पूछी गई बात है। यह तो यंत्र मस्तिष्क से पूछी गई बात है कि युद्ध में जाएं हम चीन से या नहीं। और उस मशीन को सारे तथ्य सिखा दिए गए, चीन के पास कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं। अमरीका के पास कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं। उचित होगा युद्ध में उतर आना या नहीं, पूछा उस यंत्र को। यंत्र ने उत्तर दियाः लड़ना ठीक नहीं है।
और चीन पर हमला नहीं हुआ अमरीका का। यह निर्णय किया एक यंत्र ने।
यंत्र के निर्णय ज्यादा सक्षम, कम भूल-चूक भरे होंगे, आदमी से भूल-चूक हो सकती है।
हमें, बचपन से सिखा दिया जाता है--मेरा नाम राम है, मेरा नाम राम है।
फिर मुझे कोई पूछता है, तुम्हारा नाम? तो मैं कहता हूं कि मेरा नाम राम है। इसमें कोई विचार की जरूरत पड़ती है? यांत्रिक स्मृति में भर दी गई है बात, उत्तर निकल आता है। लेकिन जिस बात को न भरा गया हो यांत्रिक स्मृति में, उसका उसके पास कोई उत्तर नहीं होता। बचपन से सिखा दिया जाता, ईश्वर है, तो हम सीख लेते हैं; ईश्वर है। और हम रूस में पैदा हुए होते और सिखा दिया जाता है, ईश्वर नहीं है; तो हम सीख लेते हैं, ईश्वर नहीं है। और आज मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है और आप कहें, है, तो आप यह मत समझना कि यह उत्तर विचार से आया है, यह उत्तर स्मृति से आया है। आप रूस में होते, स्मृति दूसरी होती। आप दूसरा उत्तर देते।
यहीं एक हिंदू है, यहीं एक मुसलमान है, यहीं एक जैन है, यहीं एक ईसाई है। पूछ लें आप एक प्रश्न, चार उत्तर निकलेंगे। आप यह मत सोचना कि ये विचार

से आते हैं। इन चारों की स्मृति को अलग-अलग पोषण मिला, अलग-अलग भोजन मिला।
यह केवल स्मृति है, विचारों का संग्रह है। यह कोई ज्ञान नहीं है।
ज्ञान तो कोई और ही बात है। ज्ञान है, जीवन के तथ्यों का सीधा साक्षात, स्मृति का बीच में व्यवधान न हो।
सुभाष के एक बड़े भाई थे, शरदचंद्र। वे एक ट्रेन में यात्रा करते थे। अंधेरी रात थी, कोई सुबह के चार बजे होंगे। बाथरूम में गए। हाथ-मुंह धोते थे, घड़ी निकाली हाथ से वह छूट गई। संडास के रास्ते नीचे गिर गई। अंधेरी रात थी। भागती गाड़ी थी, चैन खींची। लेकिन खड़े होते-होते मील भर का फासला हो गया होगा। कंडक्टर ने, गार्ड ने कहाः बहुत मुश्किल है घड़ी का खोज लेना। अंधेरी रात है एक मील का फासला हो गया, कहां हम खोजेंगे, छोटी सी घड़ी है। इस जंगल में कहां उसे खोजेंगे, कैसे उसे खोजेंगे, दिन भी होता तो कोई बात थी, बहुत मुश्किल है। क्षमा करें गाड़ी चलने दें। लेकिन शरद ने कहाः नहीं, घड़ी मिल सकेगी, मैंने चलती हुई सिगरेट उसके पीछे डाल दी है। वह जल रही होगी। उसके आस-पास ही फीट-आधा फीट की दूरी पर घड़ी होगी और जलती सिगरेट मिल जाएगी, आदमी दौड़ा दें।
आदमी दौड़ाया गया, वह घड़ी मिल गई। जलती सिगरेट को गिरी हुई घड़ी के पीछे डाल देना, किसी स्मृति का काम नहीं हो सकता, क्योंकि पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था। और न ही किसी गीता और कुरान में लिखा है, घड़ी गिर जाए तो जलती सिगरेट उसके पीछे डाल दें। किसी किताब में भी नहीं है। किसी धर्म की शिक्षा भी नहीं है कि ऐसा करना। और शरद के जीवन में भी यह मौका पहली दफा आया था। मौका था नया, स्मृति के पास कोई उत्तर न था। और अगर स्मृति के पास उत्तर भी होता तो देर लग जाती, स्मृति को समय लगता उत्तर देने में। उतनी देर में तो घड़ी पीछे छूट जाती। स्मृति से नहीं आया उत्तर।
एक समस्या थी सामने, चेतना में सीधा उसे देखा, देखने से, आघात से आया उत्तर। यह उत्तर स्मृति का नहीं है। स्मृति के उत्तर को आप विचार मत समझ लेना। इसलिए विचार की जिसे खोज करनी है, उसे क्रमशः स्मृति को मार्ग से अलग कर देना होता है। अगर पूछना हो ईश्वर है और स्मृति कोई उत्तर दे, तो उसे कहना, क्षमा करो, तुम चुप रहो, तुम्हारा उत्तर उत्तर नहीं है। मत आओ मेरे बीच और मेरे प्रश्न के बीच। मुझे सीधा मेरे प्रश्न से निपट लेने दो। मैं सीधा अपने प्रश्न के साथ साक्षात कर सकूं, मेरा प्रश्न और मैं सीधा जी सकूं साथ-साथ।
जो आदमी जीवन की समस्या के साथ सीधा जीना शुरू कर देता है, उस आदमी के भीतर विचार का जन्म होता है। स्मृति के मार्ग से विचार का जन्म नहीं होता, इसीलिए पंडित बहुत विचारहीन हो जाता है। पंडित विचारहीन हो ही जाता है। उसका सारा आग्रह अपनी स्मृति के संग्रह पर होता है। वह वहीं जीता है। मैंने सुनी है एक और गणितज्ञ के संबंध में एक घटना। बहुत बड़ा गणितज्ञ था। कहते हैं, उसने ही पहली दफा गणित पर बहुत बड़ी-बड़ी किताबों का संग्रह किया। वह एक दिन सुबह अपनी पत्नी और अपने बच्चों को लेकर पहाड़ी पर पिकनिक के लिए गया हुआ था। बीच में था एक नाला, उसे पार करना था। उसकी पत्नी ने कहाः बच्चों को धीरे-धीरे पार करा दें, कोई बच्चा डूब न जाए। उसने कहाः ठहरो, मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, इतना बड़ा गणितज्ञ हूं। मैं अभी नदी की औसत गहराई, एवरेज गहराई नापे लेता हूं। अपने बच्चों की औसत ऊंचाई भी नापे लेता हूं। फिर देखें क्या। छोटा सा नाला था, उसने जल्दी से नाप लिया। अपने बच्चों को नापा। रेत पर हिसाब लगाया। उसने कहाः बेफिकर रहो, नदी की औसत गहराई से हमारा औसत बच्चा ऊंचा है। जाने दो।
वह आगे हो गया। उसकी पत्नी ने पति को मान लिया। पत्नियां हमेशा पतियों को मानती रही हैं, यह बहुत पुराना दुर्भाग्य है। यह कथा बहुत पुरानी है। पत्नियां तो मान लेती हैं पति को। मान लिया उसने, इतना बड़ा गणितज्ञ है, दूर-दूर तक लोग मानते हैं। वह पीछे हो गई।
एक छोटा बच्चा डुबकियां खाने लगा। नदी को गणित का कोई पता है या कि बच्चे को। एक छोटा बच्चा डुबकियां खाने लगा। औसत ऊंचाई और बात है, एक-एक आदमी की ऊंचाई और बात है। कहीं नदी उथली थी, कहीं गहरी थी, कोई बच्चा छोटा था, कोई बच्चा बड़ा था। सबका जोड़ औसत तो गया। लेकिन असली बच्चा डूबने लगा

था। उसकी पत्नी चिल्लाई कि वह छोटा बच्चा डूबता है। जानते हैं, विचारक ने क्या किया? वह भागा बच्चों को बचाने को नहीं, नदी पार उस तरफ, जहां रेत पर हिसाब किया था कि देखूं क्या कोई गणित में भूल हो गई।
उसकी दौड़ है अपने विचार के तंत्र की तरफ, गणित में कोई भूल तो नहीं हो गई, नहीं तो डूब कैसे सकता है बच्चा। तो वह बच्चा डुबकियां खाता रहा और वह नदी के किनारे अपने गणित को देखने चला गया। जो स्मृति पर जीता है, जब भी जीवन समस्याएं खड़ी कर देता है, तब वह दौड़ता है अपने शास्त्रों में, अपनी स्मृति में कि कहां है उत्तर। कहीं कोई भूल तो नहीं हो गई।
लेकिन जीवन की समस्या को सीधा साक्षात नहीं करता। दौड़ता है नदी की रेत पर, अपने हिसाब को देखने। तब तक बच्चा डूब ही जाता है। जिंदगी आगे बढ़ जाती है। नदी कोई राह देखती रहेगी कि तुम्हारा गणित ठीक हो जाए या गलत। जिंदगी गणित से नहीं चलती और न जिंदगी किताबों और शास्त्रों से चलती है। जिस दिन जिंदगी गणित और किताबों से चलने लगेगी समझ लेना कि जिंदगी खत्म हो गई है। उस दिन मशीनें होंगी जमीन पर, कोई आदमी नहीं। उस दिन जीवन नहीं होगा, जड़ता होगी। चेतना के रास्ते अनूठे हैं, कोई गणित, कोई सिद्धांत उसे बांध नहीं पाता। इसलिए सब सिद्धांत पीछे पड़ जाते हैं और जीवन रोज आगे बढ़ा जाता है।
लेकिन पंडित का मन, विचार के संग्रह करने वाले का मन जुड़ा रहता है अपने शास्त्रों से। वह बार-बार जीवन के और अपने बीच में शास्त्रों को ले आता है। और तब उलझन सुलझती नहीं और बढ़ती चली जाती है। लेकिन विचारक यही सोचता है, यह तथाकथित विचारक कि शायद कहीं सिद्धांत के समझने में कोई भूल हो गई है, इसलिए सब गड़बड़ हुआ जा रहा है।
जिंदगी मुसीबत खड़ी करती है, तो वह कहता है कि गीता को समझने में भूल हो
गई या हम गीता का ठीक से आचरण नहीं कर पाए। इसलिए सब गड़बड़ हुई जा रही है, कि बाइबिल को हम ठीक से नहीं समझ पाए, कि कुरान की व्याख्या में कुछ भूल हो गई है, इसलिए जिंदगी गड़बड़ हुई जा रही है। जिंदगी, साहब, इसलिए गड़बड़ नहीं हो रही है, जिंदगी इसलिए गड़बड़ हो रही है कि जिंदगी है रोज नई, किताबें हैं सब पुरानी। सिद्धांत हैं सब बीते हुए और जिंदगी रोज अनूठे, अज्ञात, अननोन रास्तों पर बह जाती है। जिंदगी पल-पल नई है और उसूल और सिद्धांत और थीसिस सब पुरानी, सब फिलॉसफीज पुरानी हैं।
नई जिंदगी को पुराने उसूलों से जोड़ने की कोशिश से सारी गड़बड़ है। बीत
गए से, अतीत से, जो जा चुका उससे उसको जोड़ने की कोशिश जो आ रहा है, भूल है। उससे उसे नहीं जोड़ा जा सकता। चेतना पुरानी पड़ जाती है उससे जोड़ने से, और जीवन हो जाता है नया। इसलिए चेतना का जीवन से कभी कोई संपर्क नहीं हो पाता। संपर्क होगा तब, जब नित-नये होते जीवन के साथ चेतना भी नित नई हो जाए।
नया हो जीवन, नई हो चेतना, तो होगा संपर्क जीवन से। पुरानी चेतना से नये जीवन का कैसे संपर्क हो सकता है। हम सबकी चेतना पुरानी हो जाती है, विचार के संग्रह के कारण। होनी चाहिए नई, इसलिए विचार का संग्रह, विचार नहीं है। विचार को विदाई, विचार का अपरिग्रह। विचार से विचारों के संग्रह से मुक्त चेतना। जीवन को सीधा, सीधा बिना बीच में किसी को लिए देखने में समर्थ चेतना, विचार को जन्माती है।
दूसरी बात, विचार अनुमान भी नहीं है, कि हम बैठे हैं और विचार कर रहे हैं कि ईश्वर कैसा है, कि हम बैठे हैं और विचार कर रहे हैं कि स्वर्ग के रास्ते कैसे हैं और जमीन कैसी है और भूगोल कैसा है। कि हम बैठे विचार कर रहे हैं कि देवताओं के पैर सीधे होते हैं कि उलटे, कि भूत-प्रेत कैसे होते हैं। इस सबका कोई अनुमान विचार नहीं है। अनुमान बच्चों का खेल है, लेकिन बूढ़े से बूढ़े दार्शनिक भी अनुमान के खेल में लगे रहे हैं और ऐसे-ऐसे अजीब अनुमान इकट्ठे कर दिए हैं, जो सिवाय मनुष्य की कल्पना की उड़ानों के और कुछ भी नहीं और उन अनुमानों को हमने इतने जोर से अपने ऊपर ले लिया है कि उन अनुमानों के कारण सत्य से संपर्क होना कठिन है।
कभी-कभी कोई भूल-चूक से अनुमान अंधेरे में फेंके गए तीर की तरह कहीं
लग भी जाता हो, तो उससे कोई अर्थ नहीं है। सवाल है, अनुमान कभी भी सत्य तक

नहीं ले जा सकता। इनफरेंस कभी भी सत्य तक नहीं ले जा सकता। सत्य के लिए तो अनुमान और कल्पना करने वाला मन नहीं, बल्कि कल्पनाओं, अनुमानों से मुक्त मन की जरूरत है।
मैंने एक छोटी सी घटना सुनी है। मैंने सुना है, एक स्कूल में एक इंस्पेक्टर का आगमन हुआ। उसके आने के पहले ही उसके पागल होने की खबर भी उस स्कूल में पहुंच चुकी थी। प्रतिभा की खबरें पहले ही पहुंच जाती हैं। लोगों को बहुत दिन से शक हो आया था कि उसका दिमाग खराब है। शक हो जाने का सबसे पहला कारण तो यही था कि दूसरा कोई इंस्पेक्टर कभी मुआयने को, निरीक्षण को नहीं जाता था, घर बैठ कर डायरी भर देता था। यह पागल निरीक्षण करने को जाने लगा था, तो इंस्पेक्टरों को शक हो गया था कि इसका दिमाग खराब है।
फिर और घटनाएं घटीं, जिससे शक होने लगा। वह ऐसे प्रश्न पूछता था, जिनके कोई उत्तर नहीं हो सकते थे। और स्कूलों की रिपोर्ट खराब कर आता था। नये स्कूल में वह आने को था आज। सारा ही स्कूल थर्राया हुआ था। सारे स्कूल में तैयारी की गई थी, बच्चों को अनूठे-अनूठे प्रश्नों के उत्तर सिखाए गए थे, पता नहीं वह क्या पूछ लेगा। उसके पूछने का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता था।
आखिर वह आ गया, प्रधानाध्यापक कंपता हुआ खड़ा है, अध्यापक कंप रहे हैं।
जो सबसे बड़ी क्लास थी, उसमें उसे ले गए हैं। उसने आते ही कहाः मैं एक प्रश्न पूछूंगा और अगर तुम उसका उत्तर दे सके, तो फिर मैं दूसरा प्रश्न नहीं पूछूंगा, क्योंकि हंडिया का एक ही चावल देख लेना काफी होता है। लेकिन अगर पहले प्रश्न का तुम उत्तर न दे सके, तो फिर आज मैं हूं और तुम हो। फिर प्रश्न मैं पूछूंगा शाम तक। और जो प्रश्न मैं पूछने को हूं, अब तक बहुत जगह पूछा है, कोई उत्तर नहीं दे पाया है। ऐसे बहुत सरल सा प्रश्न है। उसने प्रश्न रख दिया। घबड़ा गए शिक्षक, उसका कोई उत्तर होना कठिन था। उसने पूछी थी एक बात कि दिल्ली से एक हवाई जहाज कलकत्ते की तरफ उड़ा, दो सौ मील प्रति घंटा उसकी रफ्तार है, क्या तुम बता सकते हो कि मेरी उम्र कितनी है?
वे बच्चे भौचक्के रह गए, अध्यापक घबड़ाए कि आ गई वही बात, जिससे बच रहे थे, क्या होगा इसका उत्तर! क्या इसका कोई उत्तर भी हो सकता है। क्या यह कोई प्रश्न है। लेकिन इससे भी ज्यादा मुसीबत तो तब हो गई, जब एक बच्चे ने हाथ हिलाया कि मैं उत्तर दे सकता हूं। अध्यापक और घबड़ाए, चुप रह जाते तो भी ठीक था, यह और उत्तर देगा तो क्या होगा। प्रश्न ही मुश्किल था, उत्तर तो और मुश्किल में ले जाएगा। लेकिन इंस्पेक्टर खुश हुआ। उसने कहाः तुम पहले लड़के हो, जिसने मेरे प्रश्न के उत्तर में कम से कम हाथ तो हिलाया है। उठो शाबाश! बोलो! उस लड़के ने कहाः आपकी उम्र है चवालीस वर्ष। इंस्पेक्टर तो हैरान हो गया, उसकी उम्र इतनी थी। उसने पूछा कि कैसे तुमने यह पता लगाया? क्या है तुम्हारा मेथड? क्या है तुम्हारी विधि? उस लड़के ने कहाः आपको मैं यह भी बता दूं, मेरे अतिरिक्त यह प्रश्न कोई हल नहीं कर सकता था। मेरा एक बड़ा भाई है, वह आधा पागल है, उसकी उम्र बाईस वर्ष है।
इस पर हमें हंसी आती है, लेकिन हमारे बड़े से बड़े फिलॉसफर्स और दार्शनिक यही करते रहे हैं। इससे ज्यादा जरा भी उन्होंने कुछ नहीं किया है। ऐसे ही अनुमान अंधेरे में फेंके गए तीरों की सारी कथा है, फिलॉसफी। मध्य-युग में ईसाई विचारक सोचते रहे, एक आलपीन के ऊपर कितने देवता खड़े
हो सकते हैं, कितने इंजिल्स खड़े हो सकते हैं। हंसिएगा इनकी बात पर! हंसिएगा तो बहुत बुरा मानेंगे लोग, क्योंकि वे बड़े-बड़े महात्मा थे, जो इस पर विचार रहे थे कि एक आलपीन की सुई पर कितने इंजिल्स खड़े हो सकते हैं। लूथर जैसे समझदार आदमी ने यह लिखा है कि मक्खियां शैतान ने बनाई होंगी। क्यों, क्योंकि लूथर जब किताब पढ़ता था, धर्मग्रंथ तो मक्खियां उसकी नाक पर बैठ कर उसको परेशान करती थीं। तो उसने लिखा है कि जरूर ही भगवान ने मक्खी नहीं बनाई होगी, धर्म में बाधा देती है। यह शैतान की बनाई हुई होनी चाहिए। क्या यह अनुमान चवालीस वर्ष के अनुमान से कुछ भिन्न है। इनमें कुछ भेद है। और यह लंबी कथा है, सबकी बात मैं नहीं कह सकूंगा। लेकिन

अगर आंख खोल कर पुरानी किताबों को उठा कर देखेंगे दार्शनिकों की, तो आप हैरान हो जाएंगे।
यह सब क्या पागलपन है। आदमी को जिंदगी का अ ब स पता नहीं है और तुम स्वर्ग और नरक की नाप-जोख बता रहे हो। आदमी के द्वार पर जो दरख्त लगा हुआ है, उसका उसे परिचय नहीं है कि वह क्या है। एक पति के पास पत्नी चालीस वर्ष रह गई है, उसे उसकी पहचान नहीं है कि वह कौन है। और तुम ईश्वर की पहचान करवा रहे हो। दूर हैं सब बातें।
एक आदमी को पूरी जिंदगी रहते यह भी पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं? और तुम मोक्ष और परलोक की सर्वज्ञता में उसको दीक्षित कर रहे हो। नासमझियों का एक लंबा खेल है। और एक लंबा जाल है अनुमानों का और कल्पनाओं का। नहीं, विचार का अनुमान और कल्पनाओं से कोई संबंध नहीं है। विचार की तेज धार तो सारे अनुमान और सारी कल्पनाओं को छेद कर अलग कर देती है, ताकि आंख पर से परदे हट जाएं और जीवन से सीधा मेल हो सके। फिर विचार क्या है?
अंतिम सूत्र में मैं आपको कहना चाहूंगा, विचार का ठीक-ठीक अर्थ हैः जागरूकता, अवेयरनेस। विचार न तो विचारों का संग्रह है, विचार न अनुमान और कल्पना है। विचार है, जागरूक चित्तता, विचार है माइंडफुलनेस, विचार है होश से भरा हुआ चित्त। होश से चित्त भरे तो विचार का जन्म होता है। और जहां विचार है, वहां निद्रा विलीन हो जाती है। वहां एक चित्त प्रबुद्ध होता है। खुलती है आंख, उसके प्रति जो चारों तरफ है। और उसके प्रति भी जो भीतर है। वे दोनों कुछ अलग नहीं हैं कि जो बाहर है वह अलग है, कि जो भीतर है वह अलग है। एक वह ही है निद्रा में, दो मालूम होता है; जागरण में एक। लेकिन वह जागरण जिसको मैं कहूं विचार, वह कैसे पैदा होता है। बैठे-बैठे माला जपने से वह पैदा होने को नहीं है। माला जपना, नींद न आती हो, तो नींद लाने की अच्छी तरकीब है।
मैंने तो सुना है कि कुछ चिकित्सक जो समझदार हैं, जिन लोगों को नींद न आने की बीमारी होती है, उनसे कहते हैंः मंदिरों में जाओ, धर्मकथा सुनो, उससे नींद आने लगती है। मंदिर में अक्सर सोए हुए लोग दिखाई पड़ते हैं। माला जपो, राम-राम कहो या कृष्ण-कृष्ण कहो या महावीर-महावीर कहो या कोई और शब्द दोहराओ। कोई भी शब्द की बहुत पुनरुक्ति जागरण नहीं लाती, नींद लाती है। एक बच्चा नहीं सोता है, उसकी मां उसे सुलाती है। कहती हैः राजा बेटा
सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। मां सोचती होगी, बहुत मधुर कंठ की वजह से राजा बेटा सो गए हैं। नहीं, राजा बेटा बोर्डम की वजह से सो गया। राजा बेटा तो क्या, राजा बेटा के राजा बाप भी सो जाते, अगर इस बात को बार-बार दोहराया जाता। तो ऊब पैदा होती है, किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से बोर्डम पैदा होती है। ऊब, घबड़ाहट, परेशानी। अगर एक ही शब्द कोई दोहराए चला जाए, तो घबड़ाहट पैदा होगी। अगर मैं यहां बैठ कर घंटे भर तक एक ही शब्द को दोहराए चला जाऊं, तो लोग उठ कर चले जाएंगे या लोग सो जाएंगे, और क्या करेंगे!
पुनरुक्ति, रिपीटिशन तो डलनेस पैदा करता है, और डलनेस नींद लाती है। नहीं, इस भांति कोई कभी जागा नहीं है। जागने के लिए तो कुछ और प्रयोग करना होगा। जागने के लिए तो जागने का ही सतत; सतत प्रयोग करना होगा। उठते, बैठते, चलते सावधानी से, अवेयरनेस से, एक-एक शब्द बोलते, आंख की पलक भी हिलाते हुए होश से पूरी तरह जानते हुए, पूरे माइंडफुल, तो होगा।
एक छोटी सी कहानी से शायद मेरी बात समझ में आए।
जापान में एक राजा ने अपने युवक पुत्र को एक फकीर के पास भेजा। फकीर गांव में आया था, राजधानी में और उस फकीर ने कहा था कि जीवन की एक ही बात सीखने जैसी है और वह है जागना। उस राजा ने कहाः यह जागना, हम रोज सुबह जागते हैं, वह जागना नहीं है? उस फकीर ने कहाः अगर वही जागना होता तो दुनिया सत्य को कभी का जान लेती। लेकिन सत्य का कोई पता नहीं है, तो यह जागना कैसा है। यह जागना नहीं है, क्योंकि जागी हुई चेतना के लिए फिर सत्य को जानने में कौन सा अवरोध है। उस राजा से कहा उसनेः मैं जागना, एक सूत्र जानता हूं जीवन को सीखने का। राजा ने अपने लड़के को कहाः जा, और इस फकीर के

पास रह। मैंने तो अपना जीवन खो दिया, तू कोशिश कर कि क्या इसके पास जागना सीख सकता है। वह राजकुमार गया।
उस फकीर ने कहाः सुनो मेरी शिक्षा किताबें पढ़ाने वाली नहीं है। मेरी शिक्षा बहुत अनूठी है। कल सुबह से तुम्हारा पाठ शुरू होगा। यह लकड़ी की तलवार देखते हो। कल सुबह से मैं हमला शुरू करूंगा तुम्हारे ऊपर। तुम किताब पढ़ रहे होगे, मैं पीछे से हमला कर दूंगा, बचाव की सावधानी रखना। तुम खाना खा रहे होगे, हमला हो जाएगा। तुम स्नान करने कुएं पर खड़े होगे, हमला हो जाएगा। चौबीस घंटे, कहीं भी हमला हो सकता है। तो सजग रहना, सावधान रहना, बचाव की हिम्मत करना। नहीं तो हड्डी-पसली टूट जाएगी।
राजकुमार बहुत घबड़ाया यह कौन सी शिक्षा शुरू होती है। लेकिन मजबूरी थी। पिता ने उसे भेजा था। सभी बच्चे मजबूरी में पढ़ने जाते हैं। पिता भेज देते हैं, उनको जाना पड़ता है। उसको भी जाना पड़ा था, लौट सकता नहीं था। दूसरे दिन से शिक्षा शुरू हो गई। वह पढ़ रहा है कोई किताब, पीछे से हमला
हो गया। चोट से तिलमिला उठे। एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीते सब हड्डी- पसलियों पर चोट हो गई, जगह-जगह दर्द होने लगा, लेकिन साथ ही उसे खयाल में आने लगी एक नई चीज, जिसका उसे पता ही नहीं था। एक सावधानी श्वास-श्वास के साथ रहने लगी कि हमला होने को है, पता नहीं कब हो जाए, किस क्षण। वह हर वक्त जैसे सचेत, जैसे खयाल में, जैसे स्मृति में रहने लगा। अब शायद आता है, जरा सी हवा चल जाए, पत्ते हिल जाएं वह जाग जाए, जरा सी घर में खटपट हो, किसी के पैर के कदम पड़ें, और वह सचेत हो जाए कि हमला होने को है, बचाव करना है।
सात दिन बीतते-बीतते वह बहुत हैरान हो गया। यह गुरु अदभुत था। चोट सिर्फ हड्डियों पर नहीं हो रही थी, भीतर चेतना पर भी होनी शुरू हो गई थी। कोई चीज जागती थी, कोई चीज उठ रही थी, जो सोई हुई थी। तीन महीने बीत गए। रोज-रोज यह चलता रहा। और रोज-रोज उस युवक ने पाया कि फर्क पड़ रहा है कोई बहुत गहरा। धीरे-धीरे वह हमले से बचाव करने लगा। हमला होता, हाथ पहुंच जाते। कोई चीज निरंतर सावधान थी, निरंतर अटेंटिव थी, हाथ पहुंच जाते, रोक लेता। तीन महीने बीत गए, हमला करना मुश्किल हो गया। गुरु हमला करता, वे हमले रोक लिए जाते। तीन महीने बीत जाने पर गुरु ने कहाः पहला पाठ पूरा हुआ। अब कल से दूसरा पाठ शुरू होगा। अब नींद में भी सावधान रहना। सोते में भी हमला कर सकता हूं। उस युवक ने माथा ठोंक लिया, जागने तक गनीमत थी, किसी तरह उपाय कर लेता था, सोने में क्या होगा और सोते में हमले कैसे रोके जा सकेंगे। लेकिन एक बात का उसे खयाल आ गया था।
इन तीन महीनों में कोई ची.ज उसने बहुत अदभुत रूप से भीतर जागते हुए पाई थी। जैसे कोई बुझा हुआ दीया जल गया हो। एक बहुत सावधानी कदम-कदम पर आ गई थी। श्वास-श्वास पर आ गई थी। और एक अजीब अनुभव हुआ था उसे कि जितना वह सावधान रहने लगा था, उतना ही विचार कम हो गए थे। मन मौन हो गया था। सावधानी के साथ-साथ यह जो अटेंशन उसे चौबीस घंटे देनी पड़ रही थी, उससे धीरे-धीरे विचार क्षीण हो गए थे। मन एक सायलेंस में, एक मौन में रहने लगा था। बड़े आनंद की खबरें भीतर से आ रही थीं। इसलिए वह तैयार हो गया कि देखें, दूसरे पाठ को भी देख लें।
और दूसरे दिन से दूसरा पाठ शुरू हो गया, नींद में हमले होने लगे। लेकिन एक महीना बीतते-बीतते ही, नींद में भी उसे होश रहने लगा। नींद भी चलती थी, भीतर कोई एक धारा चेतना की बहती रहती, जिसे खयाल बना रहता कि हमला हो सकता है। हैरान हुआ वह। सोया भी था, जागा भी था। आज उसने पहली दफा जाना शरीर सोया हुआ है मैं जागा हुआ हूं।
एक मां सोती है रात, बच्चा बीमार होता है, रोता है, नींद में ही हाथ पहुंच जाता है बच्चे पर। शायद सुबह उससे पूछो, उसे पता भी न हो कि मैंने रात बच्चे को चुपाया था। हम सारे लोग यहां सो जाएं आज और रात में कोई आधी रात में आकर बुलाएः राम! राम! तो जिसका नाम राम हो, वह पूछे क्या है, लेकिन बाकी लोगों को पता भी न चले कि कोई आवाज हुई थी।
जिंदगी भर एक नाम के प्रति अटेंशन रही है, राम। वह भीतर गहरी घुस गई है। कोई रात में भी बुलाता है, तो वह सावधान हो जाता है आदमी, जिसका नाम राम है।

तीन महीने बीतते-बीतते नींद में भी हमला मुश्किल हो गया। नींद में भी हमला होता और हाथ से रोक लिया जाता। गुरु ने कहाः तेरे दो पाठ पूरे हो गए, अब तीसरा और अंतिम पाठ शुरू होने को है। उस युवक ने सोचाः अब कौन सा पाठ होगा और? जागना और सोना दो बातें थीं। उसके गुरु ने कहाः अब तक लकड़ी की तलवार से हमला करता था, कल से असली तलवार काम में ले ली जाएगी। यह प्राण को कंपा देने वाली बात थी। लकड़ी फिर भी लकड़ी थी, चोट ही करती थी। इसमें तो प्राण भी जा सकते हैं।
लेकिन उस युवक ने देखा था, इन तीन महीनों में रात उसके भीतर जैसे कोई स्तंभ खड़ा हो गया था जागरूकता का। विचार जैसे समाप्त हो गए। जीवन से जैसे सीधी पहुंच, जीवन से सीधा संपर्क होने लगा था। एक अदभुत आनंद और आलोक फैल रहा था। उसने सोचाः अंतिम पाठ को छोड़ कर चले जाना ठीक नहीं है। पता नहीं और क्या छिपा हो। राजी हो गया।
असली तलवार के हमले शुरू हो गए। हाथ में चौबीस घंटे सोते-जागते ढाल बनी रहती, लेकिन पंद्रह दिन बीत गए गुरु एक भी चोट नहीं पहुंचा पाया। हर अंधेरे कोने से अनजान में की गई चोट भी झेल ली गई। बैठा था युवक एक दिन सुबह, एक अचानक खयाल उसे आया, वह एक झाड़ के नीचे बैठा है। दूर बहुत दूर उसका गुरु दूसरे झाड़ के नीचे बैठा कुछ पढ़ता है। सत्तर साल, अस्सी साल का बूढ़ा आदमी! उसके मन में अचानक खयाल आया, यह बूढ़ा छह महीने से मुझे परेशान किए हुए हैः सावधान! सावधान! सावधान! हर तरफ से हमला करता है, सोते हुए भी हमला करता है, आज मैं भी तो इस पर हमला करके देखूं, यह खुद भी सावधान है या नहीं? कहीं मैं ही तो परेशान नहीं किया जा रहा हूं। ऐसा उसने इधर सोचा और उधर उसका गुरु झाड़ के नीचे से चिल्लायाः ठहर! ठहर! ऐसा मत कर देना। वह बहुत घबड़ाया, उसने कहाः मैंने कुछ किया नहीं। उसके गुरु ने कहाः तू तीसरा पाठ पूरा तो कर ले, फिर तुझे पता चल जाएगा।
जब चित्त पूरा सावधान होता है, तो दूसरे के पैर की ध्वनि ही नहीं, दूसरे के विचार की ध्वनि भी सुनाई पड़ने लगती है। थोड़ा ठहर, अंतिम पाठ पूरा कर ले। चित्त की जागरूकता का ऐसा अर्थ है सावधानी, जैसे हम तलवार से घिरे हुए जीते हों और हम जी रहे हैं तलवार से घिरे हुए, मौत चारों तरफ तलवार से घेरे हुए है। जिंदगी एक सतत असुरक्षा है, इनसिक्योरिटी है, कोई सुरक्षा नहीं है जीवन में। हम तलवार से घिरे जी रहे हैं। भूल में हैं हम, हम सोचते हों कि हम सुरक्षित हैं और कोई हमला हम पर नहीं हो रहा है। हर वक्त हमला है, पल-पल हमला है। इस हमले के प्रति अगर बहुत सजग होकर कोई जिए। एक-एक कदम, एक-एक श्वास अटेंटिवली, तो उसके जीवन में धीरे-धीरे सजगता का जन्म होगा। कोई सोई चीज जागेगी, कोई कली फूल बन जाएगी। और तब, और तब ही केवल जो है विराट जीवन, जो अनंत अमृत उससे, उससे मिलना है, उससे जुड़ जाना है, उससे एक हो जाना है।
धार्मिकता का अर्थ मेरी दृष्टि में सजगता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। न मंदिरों की पूजा और न प्रार्थना। न शास्त्रों का पठन-पाठन। सोया हुआ आदमी यह सब करता रहेगा, तो यह सब और सो जाने की तरकीबों से ज्यादा नहीं है। लेकिन जागा हुआ आदमी पाता है, नहीं किसी मंदिर में जाता है पूजा करने फिर, बल्कि पाता है कि जहां वह है वहीं मंदिर है। नहीं फिर किसी मूर्ति में भगवान उसे देखने को और खोजने की जरूरत पड़ती है, बल्कि पाता है कि जो भी है और जो भी दिखाई पड़ता है, वही भगवान है।
धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो मंदिर जाता हो। धार्मिक आदमी वह है, जहां होता है, वहीं मंदिर को पाता है। धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो प्रार्थना करता हो। धार्मिक आदमी वह है, जो पाता हो कि जो भी किया जाता है, वह प्रार्थना हो गई। धार्मिक आदमी नहीं है वह, जो भगवान की खोज में कहीं भटकता हो, बल्कि आंख खोले हुए वह आदमी है, जो पाता है कि जहां भी मैं जाऊं, भगवान के अतिरिक्त कोई और से तो मिलना नहीं होता है। लेकिन यह होगा एक जागरूक चित्तता में। और जागरूक चित्तता ही जीवन की परिपूर्ण अनुभूति है। मत पूछें मुझसे कि जीवन क्या है। और न जाएं किसी को सुनने, जो समझाता
हो कि जीवन क्या है। जीवन कोई किसी को न समझा सकेगा। जीवन कोई समझाने की

बात है, प्रेम कोई समझने की बात है, सत्य कोई समझाने की बात है? कोई शब्दों से और विचारों से कुछ कह सकेगा उस तरफ? नहीं, कभी कोई कुछ नहीं कह सका है। जीवन तो खुद जानने की बात है। जीना पड़ेगा उस मार्ग पर, जहां जीवन जाना चाहता है और मार्ग वह है जागरूकता का, वह मार्ग है सचेतता का। उठते-बैठते, चलते-फिरते, बात करते जीएं; देखते हुए, आंख खोले हुए होश से भरे हुए तो रोज-रोज कोई जागने लगेगा। कोई प्राण की ऊर्जा विकसित होने लगेगी। और एक दिन, एक दिन जो महाविराट ऊर्जा है जीवन की, उससे उसका मिलन हो जाएगा। जैसे कोई सरिता बहती है पहाड़ों से और भागती चली जाती है, भागती चली जाती है। न मालूम कितने मार्गों को पार करती, कितनी घाटियों को छलांगती और एक दिन सागर तक पहुंच जाती है।
ऐसे ही जागरूकता की धारा, जो व्यक्ति जगाना शुरू कर देता है, सारी बाधाओं को, सारे पहाड़-पर्वतों को पार करती पहुंच जाती है वहां, जहां प्रभु का सागर है, जहां जीवन का सागर है।
जीवन मेरे लिए परमात्मा का ही पर्यायवाची है। जीवन यानी परमात्मा। जीवन और प्रभु भिन्न नहीं हैं। लेकिन जो सोए हैं पुजारी अपने मंदिर में, उनके द्वार पर आएगा जीवन का रथ और वापस लौट जाएगा। जीवन तो रोज आता है द्वार पर। उसके रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है, उसके घोड़ों की टाप सुनाई पड़ती है, लेकिन नींद में लगता है, बादल गरजते होंगे, वर्षा के बादल घिरे होंगे, बिजली कड़कती होगी। जीवन का प्रभु तो रोज आता है द्वार पर। द्वार थपथपाता है, खोलो, लेकिन सोए हुए मनुष्य को लगता है, हवा आई होगी, द्वार खड़खड़ाती होगी।
भीतर कोई जागा हो, तो इसी क्षण अभी और यहीं। इसी क्षण जीवन का प्रभु मिलन है। उस ओर जागने के लिए निवेदन और प्रार्थना करता हूं। उस ओर इशारा करता हूं, मेरी बातों को भूल जाएं, उनसे कुछ लेना-देना नहीं है, उनसे क्या संबंध। कोई आदमी इशारा करे चांद की तरफ, हम उसकी अंगुली पकड़ लें तो भूल हो जाती है, अंगुली से क्या मतलब। भूल जाएं इशारे को, देख लें चांद को। चांद को इशारा किया जा सकता है, लेकिन हम इशारों को पकड़ लेते हैं।
कोई महावीर की अंगुली पकड़े हुए है, कोई बुद्ध की, कोई क्राइस्ट की। और अंगुलियों की पूजा चल रही है, प्रार्थना चल रही है। पागल हो गया है आदमी। इशारे पूजा के लिए नहीं हैं, भूल जाने के लिए हैं। देखना है उसे जिस तरफ इशारा है उधर।

थोड़ी सी ये बातें मैंने कहीं। इस इशारे को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को अंत में प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का दर्शन
पांचवां प्रवचन

विचार नहीं, भाव है महत्वपूर्ण

मेरे प्रिय आत्मन्!
शुक्रिया। ईश्वर के संबंध में मेरे क्या विचार हैं, इस संबंध में बोलने को मुझसे कहा गया है। यह सवाल ही थोड़ा कठिन है। कठिन इसलिए है, कि शायद ईश्वर अकेली एक ऐसी अनुभूति है जिसके संबंध में कोई विचार नहीं हो सकते। और जो विचार रखता होगा ईश्वर के संबंध में, उसका ईश्वर से कोई मिलना नहीं हो सकता।
ईश्वर के संबंध में सोचने का कोई उपाय नहीं है। ईश्वर को हम अपने सोचने का औचित्य, अपने सोचने का विषय नहीं बना सकते। और जब तक हम सोचते हैं, विचार करते हैं, तब तक ईश्वर का हमें कोई पता भी नहीं लग सकता है।
तो पहली तो कठिनाई यह है कि ईश्वर के संबंध में कोई विचार, कोई आइडिया, कोई धारणा, कोई कंसेप्ट नहीं हो सकता है। हैं बहुत धारणाएं--ईसाई की धारणा है, हिंदू की धारणा है, बौद्ध की धारणा है; और बहुत-बहुत लोगों के बहुत विचार हैं। लेकिन कोई भी धारणा परमात्मा तक नहीं पहुंचाती है, न पहुंचा सकती है।
जहां तक मेरा विचार है, वहां तक मैं मौजूद हूं। और जहां तक मैं हूं, वहां तक परमात्मा के होने का अवसर नहीं है। मुझे मिटना पड़े, मुझे खोना पड़े, मुझे समाप्त होना पड़े, तो ही शायद उसे मैं जान पाऊं जिसे हम परमात्मा कहते हैं।
जीसस का एक वचन मुझे याद आता है। जीसस ने कहा हैः जो अपने को बचाएगा,
वह अपने को खो देगा। और वे जो अपने को खो देते हैं, अपने को बचा लेते हैं। ईश्वर के संबंध में भी यह कहा जा सकता है कि जो ईश्वर को जानने चलेगा, उसे अपने को खोना पड़ेगा। अपने सारे विचारों को, अपनी सारी मान्यताओं को, अपने सारे विश्वासों को, अपनी सारी बिलिव्स, सब खो देने पड़ेंगे। और अंततः अपने को भी खो देना पड़ेगा, तो ही वह परमात्मा को जान लेने में समर्थ हो सकता है।
इसलिए मैंने कहा कि यह बात थोड़ी कठिन है। मेरा ईश्वर के संबंध में विचार दो कारणों से कठिन है, एक तो इसलिए कि ईश्वर का कोई विचार नहीं हो सकता और दूसरा इसलिए कि ईश्वर के समक्ष मैं नहीं हो सकता हूं। जहां तक मैं हूं, वहां तक ईश्वर प्रकट नहीं होगा। मुझे मिटना होगा। जैसे बीज मिट जाता है जमीन में, और तब वृक्ष पैदा होता है। बीज बना रहे, तो वृक्ष कभी भी पैदा नहीं होगा। बीज के मिटने से वृक्ष का जन्म है। मनुष्य के मिटने से परमात्मा का प्रारंभ है।
जहां तक मैं हूं, वहां तक उसका कोई पता न चलेगा, क्योंकि मैं ही बाधा हूं, मैं ही बेरियर हूं, मैं ही रुकावट हूं, मेरे कारण ही उसका पता नहीं चल रहा है। वह कहीं दूर नहीं है कि मुझे कोई यात्रा करनी है, उसे खोजने की। वह कहीं छिपा हुआ नहीं है कि मुझे उसे उघाड़ना है। ईश्वर का अर्थ ही यह है, जो है, दैट व्हीज इ.ज, जो है, वह सभी ईश्वर है।
तो मेरे चारों ओर जो है, मेरे भीतर जो है, मेरे बाहर जो है, उस सब टोटेलिटी का, उस समग्र का नाम ही ईश्वर है। इसलिए इंच भर का फासला भी नहीं है, जो मुझे पार करना पड़े। आंख भी खोलने की जरूरत नहीं है उसे जानने को, क्योंकि आंख के भीतर जो है वह भी वही है। प्रकाश की भी जरूरत नहीं है उसे पहचानने को, क्योंकि अंधेरे में जो है, वह भी वही है।
फिर बाधा क्या है?
बुद्ध को जिस दिन पता चला सत्य का या कहें परमात्मा का, तो कुछ लोग उनके पास गए और बुद्ध से उन्होंने पूछा कि आपने क्या जान लिया है, क्या पा लिया है? तो बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने कहाः पाया कुछ भी नहीं है, क्योंकि जो मिला ही हुआ था, उसे पाने की बात कहनी ठीक नहीं है। और जाना भी कुछ नहीं, क्योंकि जो जानने वाला था वह वही था, जिसे आज पहचान लिया है। कहा

उन्होंने कि पाया कुछ भी नहीं, क्योंकि जो पाया ही हुआ था, जो सदा से मिला ही हुआ था, उसे ही जान लिया है।
फिर बाधा क्या है, फिर अड़चन क्या है, फिर कौन सी चीज रोक लेती है कि हम उसे नहीं जान पाते? यह बहुत मजे की बात है कि हमारे विचार ही बाधा हैं, हम ही बाधा हैं। कोई और बाधा हो तो हम तोड़ दें, कोई दीवाल हो तो हम गिरा दें, कोई द्वार बंद हो तो हम खोल लें, कोई दीया न जला हो तो हम जला दें। कठिनाई यही है कि हम ही बाधा हैं। इसलिए तपश्चर्या करें, प्रार्थना करें, पूजा करें और अगर मैं मौजूद हूं, तो मेरी सारी तपश्चर्या व्यर्थ हो गई, मेरी सारी प्रार्थना व्यर्थ हो गई, मेरी सारी पूजा व्यर्थ हो गई। जहां मैं मौजूद हूं वहां पहुंचना असंभव है, क्योंकि यह खयाल कि मैं हूं, ईश्वर को रोकने वाला खयाल है। जैसे समुद्र की किसी लहर को यह खयाल आ जाए कि मैं हूं, तो उसका यह खयाल ही उसे समुद्र से तोड़ देगा। और अगर कोई लहर यह समझ ले कि मैं हूं तो वह तत्क्षण अलग हो गई है सागर से। फिर सागर को पहचानना मुश्किल हो जाएगा। लहर यह जाने कि मैं नहीं हूं, तो ही जान सकती है कि मैं सागर हूं। हमारे इस जानने में कि मैं हूं, बाधा है; हमारे इस पहचान लेने में कि मैं नहीं हूं, द्वार खुल जाता है। तो मेरी धारणा, माई आइडिया जैसी कोई चीज नहीं हो सकती! क्योंकि मैं ही नहीं हो सकता हूं। और मैं ही न रहूं तो मेरे विचार का क्या सवाल। इसलिए आदमियों ने जितना विचार किया है ईश्वर के संबंध में, उतना ही ईश्वर को उलझन में डाला हुआ है।
विचारक तो नहीं पहुंचता है, जिसको हम थिंकर कहें, वह तो परमात्मा तक नहीं पहुंचता है। जिसे हम फिलॉसफी कहें, दर्शन कहें, सोचना कहें, वह तो नहीं पहुंचता है। पहुंचते हैं वे लोग, जो विचार की बाधाओं को भी पीछे छोड़ कर आ जाते हैं, जो विचार के भी पार चले जाते हैं, जो विचार से भी आगे चले जाते हैं। और यह थोड़ी समझने जैसी बात है कि मैं विचार करूंगा, मैं सोचूंगा, मेरा सोचना, मेरा विचारना मुझसे बड़ा कैसे हो सकेगा। मेरा सोचना, मेरा विचारना सदा मुझसे छोटा होगा, मुझसे बड़ा नहीं हो सकता। मैं कितना भी बड़ा विचार करूं, मेरे अहंकार, मेरे ईगो से बड़ा न होगा, क्योंकि मैं ही करूंगा, वह मेरे हाथ का खिलौना होगा।
इसलिए "मैं" सोच कर परमात्मा को कैसे पा सकूंगा। परमात्मा मेरे हाथ
का खिलौना नहीं है, बल्कि हम जिसके हाथ के खिलौने हैं, वह परमात्मा है। इसलिए हम विचार करें, सोचें, कांसेप्ट बनाएं, धारणा बनाएं; बना सकते हैं, शास्त्र निर्मित कर सकते हैं, लेकिन वे सब खेल की तरह होंगे। उनका सत्य से कोई संबंध न होगा।
और आदमी ने जितनी धारणाएं बनाई हैं उतना उपद्रव, उतनी परेशानी पैदा
हो गई है, क्योंकि सब विचारों के आस-पास पंथ इकट्ठे हो गए हैं, संप्रदाय इकट्ठे हो गए हैं, धर्म इकट्ठे हो गए हैं और हर विचार दूसरे विचार के विरोध में खड़ा हुआ है, क्योंकि विचार कभी भी टोटल नहीं हो सकता, विचार कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। जब भी विचार खड़ा होगा, किसी के विरोध में खड़ा होगा। सिर्फ निर्विचार, थॉटलेसनेस टोटल हो सकती है, विचार कभी पूर्ण नहीं हो सकता। अगर मैं परमात्मा के संबंध में एक विचार रखूं, तो वह विचार उन सब लोगों के विरोध में हो जाएगा, जो दूसरा विचार रखते हैं।
समझ लें, कोई आदमी मानता है कि परमात्मा प्रकाश है, अगर कोई कहे, गॉड इ.ज लाइट, तो फिर अंधेरे का क्या होगा?
एक फकीर हुआ है। उसने कहाः मैंने तो जहां तक समझा, पाया है कि परमात्मा को प्रकाश कहना ठीक नहीं, परमात्मा को परम अंधकार कहना ज्यादा ठीक है, क्योंकि प्रकाश तो आता है और चला जाता है अंधकार सदा है। और प्रकाश को तो हमें बनाना पड़ता है और मिटाना पड़ता है, अंधकार है। अंधकार को न हम बना सकते हैं, और न हम मिटा सकते हैं, अंधकार है। और प्रकाश में तो थोड़ी उत्तेजना है, थोड़ा तनाव है, लेकिन अंधकार परम शांति है। और प्रकाश की तो सीमा है, लेकिन अंधकार असीम है। अगर कोई कहे, परमात्मा प्रकाश है, तो कोई कह सकता है कि परमात्मा अंधकार है। फिर क्या हो?
कैसे होगा, हम परमात्मा की जो भी धारणा बनाएंगे, वह हमारी च्वाइस होगी, वह हमारा चुनाव होगा। और मनुष्य की कोई भी धारणा कभी भी अपनी विरोधी

धारणा से मुक्त नहीं हो पाती। हम कोई भी धारणा बनाएंगे, तो वह जो विरोधी धारणा है, वह सदा मौजूद रहेगी। अगर हम कहेंगे, परमात्मा शुभ है, कहेंगे परमात्मा गुडनेस है, तो फिर इविल का क्या होगा, बुराई का क्या होगा! और तब हमें या तो एक दूसरा परमात्मा जिसको हम शैतान कहते हैं, बुराई का परमात्मा ईजाद करना पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि वह शैतान है, जो बुरा है। और हमारा परमात्मा अच्छा है और शैतान बुरा है। लेकिन शैतान भी है, तो परमात्मा की स्वीकृति से ही हो सकता है अन्यथा कैसे हो सकता है। और अगर परमात्मा को स्वीकार नहीं है शैतान, तो शैतान कैसे हो सकता है। और अगर हम मानते हों कि परमात्मा के अनचाहे भी शैतान हो सकता है, तब तो परमात्मा से भी बड़ी शक्ति को हमने स्वीकार कर लिया। शैतान और भी बड़ा और शक्तिशाली हो गया।
नहीं, अगर शैतान भी है, अगर इविल भी है, तो परमात्मा की स्वीकृति से ही
हो सकता है, क्योंकि उसकी स्वीकृति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। और परमात्मा बुराई को स्वीकार करे, तो हम कठिनाई में पड़ जाएंगे। इसलिए जो कहता है, परमात्मा गुडनेस है, वह आधे को चुन रहा है, आधे को छोड़ रहा है। और अगर यह बहुत कठिनाई होता कि हम यह मान लें कि परमात्मा दोनों हैं, जो अच्छा है वह भी, जो बुरा है वह भी... वे भी परमात्मा के बेटे हैं, तो हमें थोड़ी कठिनाई शुरू हो जाती है। लेकिन वे दोनों ही परमात्मा के बेटे हैं, जो सूली पर लटकता है वह भी और जो सूली पर लटकाता है वह भी, क्योंकि परमात्मा के बेटे होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।
अगर परमात्मा सब-कुछ है, तो जिसे हम विरोध में बांट लेते हैं, उसे हमें बांटना बंद कर देना होगा। लेकिन तब हमारी बुद्धि कठिनाई में पड़ती है, क्योंकि हमारी बुद्धि सोचना चाहती है, और निर्णय लेना चाहती है। और जब भी बुद्धि निर्णय लेती है, तो सीमाएं बनाती है। वह कहती है, यहां तक स्वीकार करना ठीक है, इसके आगे स्वीकार करना मुश्किल है। तो हम कहते हैं, परमात्मा जीवनदायी है। तो फिर मौत कौन देता है। मौत भी वही देता है। तो हम कहते हैं, परमात्मा परम कृपालु है, तो फिर कठोर कौन होगा।
और हम परमात्मा को अच्छा-अच्छा बना दें, तो बुरे के अस्तित्व का उपाय कहां, फिर बुरा ठहरेगा कहां, रुकेगा कहां? तो फिर हमें झूठी बातें ईजाद करनी पड़ती हैं। शैतान से बड़ा झूठ नहीं है या जो लोग शैतान को ईजाद नहीं करते, वे कहेंगे, माया है, इल्यूजन है, वह कुछ और ही ईजाद करेंगे। लेकिन परमात्मा के अलावा उन्हें कुछ और भी मानना पड़ेगा। और जिसे वह अलावा मानेंगे, उसे परमात्मा के विरोध में मानना पड़ेगा।
ईश्वर की कोई भी धारणा हम बनाने चलेंगे, तो विरोधी धारणा का क्या होगा? और ध्यान रहे धारणा कभी भी विरोधी को आत्मसात नहीं कर पाती। प्रकाश की धारणा में अंधकार आत्मसात नहीं होता। और शुभ की धारणा में अशुभ आत्मसात नहीं होता। अच्छे की धारणा में बुरा बाहर रह जाता है। कोई भी धारणा पूर्ण नहीं हो सकती। इसलिए परमात्मा की कोई धारणा संभव नहीं, क्योंकि परमात्मा पूर्ण है। हमारी सारी धारणाएं उसके द्वार पर गिर कर मर जाती हैं। हमारी सारी धारणाएं, वहां जाकर हमें अनुभव होता है, व्यर्थ हो गईं, मीनिंगलेस हो गईं। क्या हम इसे ऐसा कहें कि परमात्मा एब्सर्ड है। किंगार्ड ने शायद कुछ बहुत करीब की बात कही है। किंगार्ड का खयाल जैसे बहुत करीब पहुंचता है। किगार्ड कहता है कि परमात्मा को, अगर हम एब्सर्ड को स्वीकार कर सकते हों, अगर हम अर्थहीन को स्वीकार कर सकते हों, तो ही हम परमात्मा को समझ पा सकते हैं।
अब अगर परमात्मा बुराई और भलाई, दोनों है, तो बहुत एब्सर्ड हो गया, अर्थहीन हो गया। और अगर परमात्मा मृत्यु और जीवन दोनों है, तो बड़ा व्यर्थ हो गया। और अगर परमात्मा शैतान भी है। और परमात्मा एक तरफ से जीसस को भी पैदा करे और दूसरी तरफ से जीसस को सूली लगाने वालों को भी प्रेरित करे, तो बात बड़ी बेहूदी हो गई। सारा अर्थ खो गया। लेकिन इतनी सामर्थ्य अगर हमारी हो, इस सामर्थ्य का मतलब क्या है, इस सामर्थ्य का मतलब क्या? अगर हम अपनी बुद्धि की कैटेगिरी, वह जो हमारे विचार करने के ढांचे हैं, उनको अगर हम छोड़ कर परमात्मा तक आने की सामर्थ्य रखते हों, तो ही हम उसे समझ पा सकते हैं।

इसलिए उसकी कोई धारणा नहीं हो सकती। और जितनी हमने धारणाएं बनाई हैं,
सब बचकानी, सब चाइल्डिश हैं। हमारी सब धारणाएं बहुत छोटी-छोटी, बच्चों के खिलौने हैं। यह ऐसे ही है, जैसे कोई सागर के किनारे पहुंच जाए, एक मुट्ठी पानी सागर का अपने हाथ में ले ले और कहे कि मैंने सागर को अपने हाथ में बांध लिया।
बुद्ध एक जंगल से गुजरते थे। पतझड़ के दिन थे। और सारे वृक्षों के पत्ते जमीन पर गिर रहे थे। रास्ते पत्तों से भर गए थे। सूखे पत्ते जगह-जगह उड़ रहे थे। बुद्ध के एक शिष्य आनंद ने बुद्ध से कहाः आपने तो सब जान लिया और सब बता दिया। तो बुद्ध बहुत हंसने लगे, उन्होंने मुट्ठी भर पत्ते अपने हाथ में उठा लिए, सूखे पत्ते। और उन्होंने कहाः जितना मैंने जाना, वह इस मुट्ठी भर पत्तों जैसा है। और जितना जानने को है, वह इस जंगल में जितने सूखे पत्ते पड़े हैं, शायद उनसे भी ज्यादा है, क्योंकि सूखे पत्ते गिने जा सकेंगे। वह जो जानने को है, उसकी कोई गिनती नहीं हो सकती। और तुमसे जो मैंने कहा है, वह तो इतना भी नहीं है, मुट्ठी भर भी, क्योंकि जब मैं कहने चलता हूं, तो मुट्ठी भर भी नहीं कह पाता। शब्द उसको भी नहीं बता पाते। एकाध पत्ता ही रह जाता है। वह भी पूरा तुम नहीं समझ पाते।
वे ठीक कहते हैं, धारणा मनुष्य की इतनी छोटी बात है और ईश्वर इतना विराट कि हम उसे धारणा में कहीं भी न बांध पाएंगे। आइडिया इतनी छोटी बात है और ट्रूथ इतना बड़ा, कि कोई आइडिया ट्रूथ नहीं हो सकता। लेकिन सभी विचार दावा करते हैं कि हम सत्य हैं और सभी आइडियोलॉजियां दावा करती हैं कि हमने सत्य को पा लिया है।
इनके ये दावे मनुष्य को बहुत महंगे पड़े। और इसलिए भविष्य में अब कोई दावेदार की जरूरत नहीं है। अब हमें दावेदार नहीं चाहिए, जो कहें कि हमारा विचार ही सत्य है, क्योंकि ये सब दावेदार परमात्मा को खंड-खंड कर देते हैं, टुकड़ा-टुकड़ा कर देते हैं। ये सब दावेदार परमात्मा को एक रंग देना शुरू कर देते हैं। ये कहते हैं, जो रंग हमने दिया है, वही सच्चा परमात्मा है। जो रंग दूसरे ने देखा है, वह सच्चा परमात्मा नहीं है। जब कि सभी रंग उसके हैं। हमारी कोई भी धारणा उसे प्रकट नहीं कर पाती। और भी आश्चर्य की बात तो
यह है कि हम धारणा भी कैसे बना लेते हैं। जो जानते हैं, वे धारणा नहीं बनाते, जो नहीं जानते, वे धारणा बनाते हैं।
अगर हम जीसस से पूछें या बुद्ध से या कृष्ण से कि ईश्वर की क्या धारणा
है, तो वे चुप रह जाएंगे। पायलट ने पूछा है जीसस से, सूली देने के पहले पूछा हैः वॉट इ.ज ट्रूथ, सत्य क्या है। वह यही पूछ रहा है कि तुम्हारी सत्य की धारणा क्या है, तुम किस चीज को सत्य कहते हो, कौन है परमात्मा, क्या है सत्य? तो जीसस ने उत्तर नहीं दिया है, वे चुप रहे। शायद पायलट ने सोचा हो, इसे पता नहीं, शायद पायलट ने सोचा हो, यह कहना नहीं चाहता। पता नहीं पायलट ने क्या सोचा, उसका कोई पता नहीं। लेकिन जीसस का हमें पता है कि पायलट ने पूछा कि सत्य क्या है, तो जीसस चुप रह गए। लेकिन एक ईसाई से पूछे कि सत्य क्या है, चुप न रह जाएगा, एक हिंदू से पूछें सत्य क्या है, चुप न रह जाएगा, एक मुसलमान से पूछें सत्य क्या है, चुप न रह जाएगा। जीसस चुप रह जाते हैं, लेकिन ईसाई चुप नहीं रह पाता। जीसस क्यों चुप रह गए हैं? अगर सत्य को जानते हैं तो कह ही दें।
और यह अंतिम क्षण है कि इससे बेहतर क्षण न होगा बताने का, फिर पूछने का समय भी नहीं है, फिर सूली लगने के करीब है। बता ही दें, अगर उन्हें सत्य पता है। लेकिन जीसस चुप क्यों है, चुप वे इसलिए हैं कि जो बताया जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता है। जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता है। जो शब्द में बंध जाता है, वह सीमित हो जाता है। और जो है वह है असीमित। उसकी कोई सीमा नहीं है। तो जीसस ने भी कहने की कोशिश की है, लेकिन पायलट नहीं समझ पाया और शायद जिन्होंने रिकॉर्ड की है घटना, वे भी नहीं समझ पाए। जीसस ने आंखों से कहा होगा, चुप रह कर भी कहा है। चुप रह जाना भी कहने का एक ढंग है, मौन हो जाना भी कम्युनिकेट करने की एक व्यवस्था है। बहुत बार हम चुप होके ही कुछ कहते हैं।

अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं, यह कहना भी कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ ठीक नहीं। क्योंकि जो मेरे भीतर उठ रहा है, वह इस शब्द में बंधता नहीं, तो जिससे मैं प्रेम करता हूं, उसका हाथ, हाथ में लेके चुप रह जाता हूं। शायद मौन से पता चल जाए। जिसे हम प्रेम करते हैं, कुछ कहने को नहीं होता, उसे गले लगा लेते हैं। अब हड्डियों से हड्डियां लगें तो प्रेम का क्या अर्थ है। लेकिन शायद उस चुप्पी, सन्नाटे में हृदय के निकट होने से शायद कोई बात अनकही हुई पहुंच जाए, कह दी जाए। जीसस ने कहा तो जरूर होगा, लेकिन आंख से कहा होगा, चुप रह कर कहा होगा, पायलट सिर्फ शब्द समझता होगा, नहीं समझ पाया होगा। जीसस का मौन भी कुछ कह रहा है।
एक झेन फकीर हुआ है। कोई उसके पास गया है और उस फकीर से उसने पूछा है
कि सत्य क्या है बोलो। बहुत दूर से आ रहा हूं, पहाड़ चल कर आ रहा हूं, थक गया हूं, तुम्हें खोजता आ रहा हूं, बोलो सत्य क्या है। वह फकीर आंख खोले बैठा था, उसने आंख भी बंद कर ली। उस आदमी ने हिलाया और उसने कहा कि आंख खोलो, मैं बहुत दूर से आया हूं, मैं बहुत थक गया हूं, मैं जानने आया हूं कि सत्य क्या है। लेकिन वह फकीर जैसे बिल्कुल मर ही गया। उसकी न केवल आंख बंद हुई, बल्कि वह गिर ही पड़ा। उस आदमी ने कहाः यह तुम क्या कर रहे हो। मैं सत्य खोजने आया हूं, मैं बहुत दूर से आया हूं, पहाड़ पर चलते-चलते थक गया हूं, और जब मैं आया था, तब भलीभांति बैठे थे। आंख खोले हुए थे, मैंने पूछा, तो तुमने आंख बंद कर ली। मैंने तुम्हें हिलाया तो तुम गिर ही गए। उस फकीर ने आंख खोली, उसने कहा कि मैं तुमसे कहने की कोशिश कर रहा हूं, समझने की कोशिश करो। उसने कहाः एक शब्द तुम नहीं बोले, आंख तुमने बंद कर ली, बैठे थे ठीक, तुम गिर गए। तो उस फष्कष्ीर ने कहाः तुम भी आंख बंद कर लो, जहां-जहां आंख खुली हो, बंद कर लो। जहां-जहां द्वार बाहर की तरफ खुले हों, बंद कर लो, तो शायद जान लो जो तुम पूछने आए हो। और उसने कहाः गिर किसलिए गए। ठीक है, चलो आंख बंद की। उस फकीर ने कहाः गिर इसलिए गया कि तुम्हें भी गिर जाना पड़ेगा, तो ही उसे जान सकते हो। जब तक तुम खड़े हो, जब तक तुम हो, तब तक उसे न जान सकोगे। गिर जाओ, मिट जाओ, खो जाओ तो शायद उसे जान लो। उस आदमी ने कहाः बेकार इतनी मेहनत की, पहाड़ चढ़ कर आया, पसीना-पसीना हो गया, कुछ मतलब की बात कहो। उस फकीर ने कहाः मतलब की बात तो पूरी हो गई। अब बैठो, बेमतलब बातें आगे चल सकती हैं। अब तुम नहीं मानते, तो मैं कुछ कहूंगा, लेकिन कहा हुआ वह नहीं होगा, जो मैं कहना चाहता हूं।
लाओत्सु ने किताब लिखी हैः ताओ तेहकिंग। तो पहला ही वाक्य यह लिखा है
कि मुझे मजबूर करते हो, इसलिए कहता हूं, लेकिन जो कहा जाएगा, वह सत्य नहीं होगा। और जो नहीं कहा जा सकता, वह सत्य चारों तरफ मौजूद है, हर घड़ी, हर पल। लेकिन जो लोग किताबों में उलझे हैं, वे उस चारों तरफ मौजूद सत्य की तरफ आंखें कैसे उठाएं। जो धारणाओं में उलझे हैं, जो विचारों में उलझे हैं, जो आइडियोलॉजिस में उलझे हैं, उनकी आंखें नहीं उठ पातीं।
रवींद्रनाथ एक किताब पढ़ रहे थे एक रात, एस्थेटिक्स पर एक किताब थी, सौंदर्यशास्त्र पर। पूर्णिमा की रात थी, लेकिन किताब पढ़ने में भूल गए कि पूर्णिमा है। पूरा चांद आकाश में है। बजरे पर थे, नाव पर थे। एक छोटी सी मोमबत्ती जला कर किताब पढ़ते थे। भूल गए कि झील पर हैं। किताब सब भुला देती है। भूल गए कि बाहर चांद बरसता है। झील की सब लहरें चांदी हो गई हैं, सब भूल गए कि बाहर कोई पक्षी गीत गाता है, सब भूल गए कि बाहर रात आधी हो गई, सब सन्नाटा हो गया, सब भूल गए। किताब सब भुला देती है। वह किताब में लगे रहे। आधी रात थक कर किताब बंद कर दी। फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा दी। मोमबत्ती के बुझते ही कुछ अलौकिक घटित हो गया। किताब के बंद होते ही आंख गई उस पर जो था। नाचने लगे उठ कर, मोमबत्ती बुझी तो रंग-रंग से, द्वार-द्वार से, खिड़की-खिड़की से चांद भीतर भर गया। चांद रुका था बाहर, एक छोटी सी मोमबत्ती का प्रकाश भी चांद को रोक सकता है। पीली सी धुआं देती मोमबत्ती थी, लेकिन चांद बाहर ठहर गया। जब अपनी मोमबत्ती जली हो, तो चांद भीतर आए भी क्यों। मोमबत्ती बुझा दी, चांद भीतर आ गया, किरणें नाचने लगीं, ठंडी हवाओं की खबर आई, बाहर पूर्णिमा की रात है, झील है, कोई पक्षी गीत गाता है।

रवींद्रनाथ नाचने लगे और उन्होंने कहाः मैं भी कैसा पागल हूं, सौंदर्य चारों तरफ बरस रहा है और मैं किताब को खोल कर उसमें सौंदर्य खोजने गया था। जहां सिवाय स्याही से खींची गईं रेखाओं के और कुछ भी नहीं। और सौंदर्य चारों तरफ बरस रहा है। फिर उन्होंने कहा, जो किताब बंद की तो बंद ही की, फिर दुबारा सौंदर्य की किताब न खोली, क्योंकि सौंदर्य मौजूद है, उसे किताब में खोजने की कोई भी जरूरत नहीं। परमात्मा भी मौजूद है, जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह सब मौजूद है। जीवन में जो भी सुदर है वह सब मौजूद है। जीवन में जो भी सत्य है, वह सब मौजूद है। कोई किताब खोलने की जरूरत नहीं है, कि किताब से हम उसे पहचानने जाएंगे। किताब बीच में दीवाल बन जाएगी। कोई विचार करने की जरूरत नहीं है कि हम विचार से उसे समझने जाएंगे, क्योंकि हम विचार से क्या समझेंगे, विचार बाधा बन जाएगा।
एक गुलाब के फूल को समझना हो, तो विचार की क्या जरूरत? और एक चांद की चांदनी को समझना हो, तो विचार की क्या जरूरत है? और एक हृदय के प्रेम को समझना हो, तो विचार की क्या जरूरत है? लेकिन अगर हम प्रेम को भी समझने जाएंगे, पहले हम किताब खोलेंगे कि प्रेम यानी क्या।

और जो आदमी किताब के प्रेम को समझ लेगा, वह शायद हृदय के प्रेम को समझने में असमर्थ हो जाए, तो आश्चर्य नहीं। और अगर हमें गुलाब के फूल को भी पहचानना है, तो पहले हम गुलाब के फूल के संबंध में पढ़ेंगे, सोचेंगे, फिर फूल के पास जाएंगे। हमारा पढ़ा हुआ, सोचा हुआ गुलाब के फूल में दिखाई पड़ने लगेगा। लेकिन यह हमारा प्रोजेक्शन है, यह हम डाल रहे हैं, यह गुलाब के फूल से हममें नहीं आ रहा है, यह हम गुलाब के फूल में डाले चले जा रहे हैं। विचारकों से ज्यादा अंधे आदमी दुनिया में नहीं होते, क्योंकि वे सब जो उनके भीतर हैं, उसे बाहर डाल देते हैं। वे वही देख लेते हैं, जो देखना चाहते हैं, वे वही खोज लेते हैं, जो खोजना चाहते हैं; और उससे वंचित रह जाते हैं, जो है।
अगर हमें वही जानना है, जो है। तो मेरे सारे विचार खो जाने चाहिए। और
भी एक बात समझ लेनी जरूरी है, परमात्मा कुछ भी है तो अननोन है, अज्ञात है, मुझे पता नहीं। और जो मुझे पता नहीं है, उसे मैं सोच-विचार कर कैसे पता पा सकूंगा। हम उसी के संबंध में सोच सकते हैं, जो हम जानते हों, जो नोन है। जिसे हमने जान लिया उसके संबंध में हम सोच सकते हैं। लेकिन जिसे हम जानते ही नहीं उस संबंध में हम सोचेंगे कैसे?
सोचना सदा बासा और उधार है, विचार कभी मौलिक और ओरिजिनल नहीं होते, हो
भी नहीं सकते। सब विचार बासे होते हैं और सब विचार उधार होते हैं, सब बॉरोड होते हैं। विचार कभी भी ताजा और नया नहीं होता। विचार सदा बासा और पुराना होता है, जो हम जानते हैं वही होता है। जो हम जानते हैं, उसको हम कितना ही बार-बार सोचें, तो भी जिसे हम नहीं जानते हैं, उसे हम कैसे पकड़ पाएंगे।
वह जो अननोन है, नोन के घेरे में कैसे पकड़ में आएगा। वह अज्ञात है, वह ज्ञात में कैसे पकड़ा जाएगा। इसलिए विचार करना जुगाली करने से ज्यादा नहीं है। कभी भैंस को दरवाजे पर बैठा हुआ जुगाली करते देखा हो। घास उसने खा लिया है, फिर उसी को निकाल-निकाल कर वह चबाती रहती है।
जिसको हम विचार करना कहते हैं, वह जुगाली है। विचार हमने इकट्ठा कर लिए हैं किताबों से, शास्त्रों से, संप्रदायों से, गुरुओं से, कॉलेजों से, स्कूलों से, चारों तरफ विचारों की भीड़ है, वे हमने इकट्ठे कर लिए हैं, फिर हम उनकी जुगाली कर रहे हैं। हम उन्हीं को चबा रहे हैं बार-बार। लेकिन उससे अज्ञात कैसे हमारे हाथ में आ जाएगा?
अगर अननोन को जानने की आकांक्षा पैदा हो गई हो, अगर अज्ञात को पहचानने
का खयाल आ गया हो, तो वह जो नोन है, उसे विदा कर देना होगा, उसे नमस्कार कर लेना होगा, उससे कहना होगा अलविदा। उससे कहना होगा, तुमसे क्या होगा, तुम जाओ और मुझे खाली छोड़ दो। शायद खालीपन में मैं उसे जान लूं जो मुझे पता नहीं है। लेकिन भरा हुआ मैं तो उसे कभी भी नहीं जान सकता हूं। इसलिए विचारक कभी नहीं जान पाते हैं और जो जान लेते हैं, वे विचारक नहीं हैं। जिसको हम मिस्टिक कहें, जिसको हम संत कहें, वे विचारक नहीं हैं, वे वह आदमी

हैं, जिसने कहा कि रहस्य है। अब जानेंगे कैसे, खोजेंगे कैसे, सोचेंगे कैसे, जिसने कहा रहस्य है, मिस्ट्री है, हम अपने को मिस्ट्री में खोए देते हैं।
शायद खोने से मिल जाए, जान लें।
छोटी सी कहानी से समझाने की कोशिश करूं।
मैंने सुना है, समुद्र के किनारे मेला भरा हुआ था। बहुत लोग उस मेले में गए। दो नमक के पुतले भी गए हुए हैं। और मेले के किनारे, समुद्र के तट पर खड़े होकर लोग सोच रहे हैं समुद्र की गहराई कितनी है। लेकिन वे किनारे पर खड़े होकर सोच रहे हैं। अब समुद्र की गहराई को उस किनारे पर खड़े होकर सोचने से क्या मतलब? समुद्र कितना गहरा है, यह किनारे पर बैठ कर कैसे सोचा जा सकता है! समुद्र में उतरना पड़ेगा। लेकिन विचार करने वाले हमेशा किनारों पर बैठे रहते हैं, वे कभी उतरते नहीं। उतरना और तरह की बात है, विचार करना और तरह की बात है। विचार करने के लिए किनारे पर बैठे होना ठीक है।
नमक के पुतले भी आए हुए थे। उन्होंने कहाः लोग बहुत सोचते हैं, लेकिन कुछ पता नहीं चलता। कोई कितना बताता है, कोई कितना बताता है। और किनारे पर बैठे लोग विवाद करने लगे हैं और झगड़ा शुरू हो गया है। और किसी की बात न सही सिद्ध होती है, न गलत सिद्ध होता है, क्योंकि समुद्र में कोई गया नहीं है। तो नमक के पुतले ने कहाः मैं कूद कर पता लगा आता हूं कि कितना गहरा है। नमक का पुतला कूद भी सकता है, क्योंकि सागर से उसकी आत्मीयता है। नमक का पुतला है, सागर से ही निकला है, जाने में डर भी क्या है। उस सागर में कूद सकता है। वह कूद गया। सारे लोग किनारे पर खड़े होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह निकल आए और बता दे। वो जैसे-जैसे सागर में गहरे जाने लगा, वैसे-वैसे पिघलने लगा। वह नमक का पुतला था। वह सागर में पिघलने लगा, गहरा तो जाने लगा, लेकिन पिघलने लगा। वह गहरा पहुंच भी गया, उसने गहराई का पता भी लगा लिया, लेकिन जब तक पता लगाया, तब तक वह खुद समाप्त हो चुका था।
उसे पता तो चल गया था कि सागर कितना गहरा है, लेकिन लौटने योग्य बचा नहीं कि लौट कर बाहर तट पर लोगों से कह सके कि इतना गहरा है। बहुत लोगों ने प्रतीक्षा की, सांझ होने लगी। उसके मित्र ने कहा कि पता नहीं, मित्र कहां खो गया है। मैं उसका पता लगा आता हूं। वह मित्र जो था नमक का पुतला, वह भी कूद गया। फिर रात घनी हो गई, वह भी नहीं लौटा। वह भी पहुंच गया मित्र के पास। लेकिन जब तक पहुंचा, तब तक खुद खो गया।
फिर सुबह वह मेला उजड़ गया। फिर हर वर्ष वहां मेला भरता है और लोग पूछते हैं, उस आस-पास रहने वाले लोगों से, पुतले वापस तो नहीं लौटे? समुद्र की कितनी गहराई है इसका पता लगाना है? लेकिन वे खुद समुद्र की गहराई में जाने को रा.जी नहीं।
परमात्मा के किनारे बैठ कर कुछ भी पता नहीं चल सकता है। जाना पड़े और कठिनाई यह है कि जो जाता है, वह खो जाता है। जो जाता है, वह लौट कर कहने योग्य नहीं रह जाता। जो जाता है, वहां से मूक होकर लौटता है। जो जाता है वहां, सब खो जाता है उसका। उसकी आंखों से शायद हम पहचान लें। शायद उसके उठने चलने से पहचान लें। शायद उसके जीने से पहचान लें। लेकिन नहीं, हम शब्दों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं पहचानते। हम हजारों साल तक शब्दों पर विचार करते रहते हैं।
अब कैसी मजे की बात है, जीसस उन नमक के पुतलों में एक हैं, जो सागर की गहराई तक पहुंच गया है। लेकिन जो लोग थे जीसस के आस-पास, वे न पहचान पाए। वे तो इतना पहचान न पाए कि एक आवारा, एक उपद्रवी, एक रिबेलियस आदमी मालूम होता है, इसकी गर्दन काट दो। तो उन्होंने, उसकी गर्दन काट दी।
अब दो हजार साल से जीसस ने क्या कहा है, इस पर हजारों लोग बैठ कर विचार
कर रहे हैं। किताबों पर किताबें लिख रहे हैं, कमेंट्री लिख रहे हैं, विवाद कर रहे हैं कि किसकी कमेंट्री, किसकी टीका ठीक है और विवाद चल रहा है और सारी दुनिया में विचार चल रहा है, जीसस ने क्या कहा है। शब्द पकड़ने वाले हैं हम। लेकिन जीसस जिस सागर में कूदा उस सागर में कूदने की किसी को भी कोई फिकर नहीं है।... जो उसमें कहा है। उसने कहा है कि जीसस वर द लास्ट क्रिश्चियन, जीसस आखिरी ईसाई थे। ठीक ही बात मालूम होती है। कृष्ण भी आखिरी हिंदू होंगे और महावीर भी आखिरी जैन होंगे और बुद्ध आखिरी बुद्ध

होंगे, क्योंकि पीछे हम शब्दों की बातों पर विचार करते हैं, किनारे पर बैठ कर कूदता कोई भी नहीं। लेकिन हम भी तरकीबें निकाल लेते हैं। तरकीबें ऐसी, जिनसे ऐसा लगता है कि काम पूरा हो गया। अब मैं देखता हूं एक आदमी जीसस को प्रेम करे, तो वह एक सूली गले में लटका ले। अब बड़े मजे की बात है, सूली गले में नहीं लटकाई जाती, सूली पर गला लटक सकता है। वह जीसस को तो सूली पर लटकाना चाहता है और मैं अगर उनको प्रेम करता हूं तो एक छोटी सी सूली गले में लटका लेता हूं। अब यह नितांत रूखा हो गया है। अपने से रूखा हो गया। सूलियां इन गलों में लटका कर घूमने का कोई मतलब? खिलौने हो जाएंगे। किसी मतलब के न रह जाएंगे।
लेकिन, और जीसस को गले में नहीं लटकानी पड़ती सूली, गला ही सूली में लटक जाता है। वहां सूली खड़ी है और जीसस को उस पर लटक जाना पड़ता है। तो एक तो वह आदमी है, जो सूली पर लटके और एक हम जैसा आदमी है, जो एक छोटी सी सूली बना ले, चांदी की भी बनती है, सोने की भी बनती है, उसको गले में लटका लें। और जो जीसस समुद्र में कूद कर मिट कर पा सके हैं, सूली पर लटक कर पा सके हैं, हम किनारे पर बैठ कर सूली गले में लटका लें और पा लें। तो फिर हमारे पास शब्द रह जाएं। तो फिर हम बैठे विचार करते रहेंगे कि जीसस का ईश्वर से क्या मतलब था, जीसस क्या कहते हैं ईश्वर के संबंध में।
और मैं आपसे कहना चाहूंगा कि जीसस और सबके संबंध में कहते हैं, ईश्वर
के संबंध में बिल्कुल चुप हैं। और कृष्ण और सब संबंधों में कहते हैं, लेकिन ईश्वर के संबंध में चुप हैं। आज तक ईश्वर के संबंध में जो भी जानता है, उसमें कुछ कहा ही नहीं। हां, जो नहीं जानते, उन्होंने बहुत कहा है। उनके कहने का कोई अंत नहीं है। जो नहीं जानते हैं, वे दिन-रात कह रहे हैं। और जो जानते हैं, वे बिल्कुल चुप हैं।
अब यह बड़ी उलझन की बात है। और इस उलझन को अगर हम ठीक से न समझ पाएं, तो
इन दो हिस्सों में हम भी विभाजित हो सकते हैं। या तो हम उन लोगों के साथ हो सकते हैं जो चुप रह गए हैं, और जिन्होंने जाना है। या हम उनके साथ हो सकते हैं जिन्होंने नहीं जाना है और बहुत कुछ कहा है।
मुझे तो ऐसा लगता है कि ईश्वर के संबंध में सोचें मत, ईश्वर में डूब जाएं। ईश्वर के संबंध में विचार मत करें, ईश्वर में खो जाएं। ईश्वर में अपने को मिटा दें। और हम मिटा सकते हैं। और हम कितनी भी कोशिश करें, लाख उपाय करें, तब भी हम अलग कहां हो पाते हैं, सिर्फ भ्रम पैदा हो जाता है कि हम अलग हैं।
जैसा कि मैंने कहा कि लहर अपने को सागर से अलग समझ ले। अलग हो नहीं पाती, हो भी नहीं सकती है। लेकिन एक भ्रम में जी सकती है कि मैं अलग हूं। और जब वह भ्रम में जी रही है, तब सागर हंस रहा है कि पागल है। अलग कहां है? अलग कैसे हो सकती है? अलग होने का उपाय नहीं है। यह तो हो सकता है कि सागर बिना लहरों का हो, यह कभी हो सकता कि एक लहर और बिना सागर के हो जाए? लहर तो सागर का एक हिस्सा है।
लेकिन हम भ्रम पाल सकते हैं। और हम सबने भ्रम पाला हुआ है कि हम अलग हैं। उस भ्रम को जो तोड़ देता है, वह ईश्वर में प्रवेश पा जाता है। और ईश्वर निकट है। और तत्काल उपलब्ध है। ऐसा नहीं है, वह कभी दो हजार साल पहले जेरुसलम में उपलब्ध था या पांच हजार साल पहले कुरुक्षेत्र में उपलब्ध था या ढाई ह.जार साल पहले बुद्ध गया में उपलब्ध था। वह अभी और यहीं हम सबको भी उतना ही उपलब्ध है, जैसे श्वास उपलब्ध है। लेकिन हम इतने मजबूत हैं और हम किनारे को इतने जोर से पकड़े हैं कि हम नहीं डूब पाते, हम बाहर ही रह जाते हैं। जो नहीं डूब पाता, वह अभागा है। फिर वह कितने ही शब्द सीख ले और कितने ही सिद्धांत सीख ले, और कितने ही विचार संगृहीत कर ले, नहीं जान पाएगा। जानना हो, तो विचार को छोड़ देना होगा; न जानना हो, तो हम विचारों में खोए रह सकते हैं। न जानना हो, तो हम इतने विचार इकट्ठे कर ले सकते हैं कि जानने का भ्रम भी पैदा हो जाए और जानना भी न हो पाए।
सुकरात मरने के करीब है, तो किसी ने कहा है कि लोग कहते हैं, तुम परम ज्ञानी हो। सुकरात ने कहाः गलत कहते होंगे। पहले जब मैं नहीं जानता था, तो ऐसी भूल मैं भी करता था। मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं।

सुकरात कह सकता है, मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं है। और जो इतना कहने की हिम्मत जुटा लेता है कि मुझे पता नहीं है, मैं नहीं जानता हूं। न मेरा विचार वहां तक पहुंचता है, न मेरा हाथ वहां तक पहुंचते हैं, न मेरी कोई क्रिया वहां तक पहुंचती है, न मेरी कोई प्रार्थना वहां तक पहुंचती है, मेरा कुछ भी वहां तक नहीं पहुंचता, मैं वहां तक पहुंच ही नहीं पाता हूं। ऐसी हेल्पलेस, ऐसी असहाय अवस्था में जो खड़ा हो जाता है, वह तत्काल डूब जाता है, क्योंकि उसके पास पकड़ने के लिए, क्लीगिंग के लिए कोई सहारा नहीं बचता। न कोई सिद्धांत बचता है, न कोई शास्त्र बचता है, न कोई संप्रदाय, न कोई चर्च, न कोई मंदिर, कुछ उसके पास पकड़ने को सहारा नहीं बचता है। उसके सब सहारे छूट जाते हैं। और जैसे ही सहारा छूट जाता है, आदमी डूब जाता है।
एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
मैंने सुना है, एक अमावस की अंधेरी रात में एक आदमी जंगल में खो गया।
अंधेरे की रात, जंगल था अनजान, खो गया। रास्ता मिलता न था, टटोल-टटोल कर खोजता था। अचानक... आवाज गूंज कर लौट आती है, पास कोई सुनने वाला नहीं है।
दूर तक आंखें फैलाता है, घाटी में कहीं कोई एक दीया भी दिखाई नहीं पड़ता।
पता नहीं नीचे कितना गड्ढा है, अगर हाथ छूट गए तो मृत्यु के सिवाय कुछ दिखाई नहीं पड़ता, तो जितनी ताकत है, जितनी सामर्थ्य है, सारी ताकष्त एक ही काम में लगानी है कि रात गुजर जाए और किसी तरह झाड़ी पकड़े रहे। सुबह हो जाए, शायद रास्ते से कोई निकले।
लेकिन रात है सर्द, ठंडी है। ठंडी हवाएं उसके हाथों को ठंडा किए दे रही हैं। घड़ी-दो घड़ी में उसके हाथ जम गए हैं। अब उसे ऐसा भी नहीं लगता है कि मेरे हाथ हैं, अब हाथ धीरे-धीरे झाड़ी से छूटने लगे हैं, पकड़ भी नहीं मालूम होती है, क्योंकि हाथ बिल्कुल जम गए हैं और पकड़ भी नहीं पा रहे हैं। अब वह घबड़ा रहा है, अब वह चिल्ला रहा है कि मैं मरा, मुझे बचाओ! मैं मरा। लेकिन घाटी में अपनी ही आवाज गूंजती है और कोई भी नहीं। है भी जिंदगी की घाटी ऐसी, कितना ही हम चिल्लाएं, कितने ही चारों तरफ लोग हों, अपनी ही आवाज गूंजती है, कौन सुनने को है। आखिर आधी रात होते-होते उसके हाथ सरकते- सरकते... झाड़ी छूट गई। छोड़ी नहीं है उसने, छूट गई है झाड़ी। लेकिन चमत्कार हुआ है, नीचे कोई गड्ढा ही न था, झाड़ी छोड़ कर वह जमीन पर खड़ा हो गया। तब वह बहुत अपने को कोसने लगा कि मैं भी बहुत पागल हूं, व्यर्थ ही तीन घंटे तक परेशान था, पकड़े था, नीचे जमीन है।
हम सारे लोग भी जब तक कोई सहारा पकड़े हुए हैं, कोई विचार पकड़े हुए हैं, कोई शास्त्र पकड़े हुए हैं और सोच रहे हैं, इसको छोड़ देंगे, तो अंधकार में खो जाएंगे, गड्ढे में गिर जाएंगे, फिर कहां होंगे हम। उन्हें भी पता नहीं है कि जैसे ही हम सत्य छोड़ देते हैं, वह जो, जिसको हम कहें, परम भूमि है, जो अल्टीमेट ग्राउंड है, वह जो परमात्मा है, जब हम सब छोड़ देते हैं, तो हम अचानक पाते हैं कि पकड़ कर हम व्यर्थ ही परेशान थे। सब छोड़ कर हम उसे पा लेते, जो निरंतर हमारे नीचे मौजूद है। जिसे हमने कभी खोया नहीं है।
उस आदमी ने भी कब खोई थी नीचे की जमीन। वह आदमी पूरे वक्त जमीन के करीब था। कौन रोके था उसे? खुद की पकड़ उसे रोके थी। कोई ईसाइयत को पकड़े है, कोई हिंदू धर्म को पकड़े है, कोई कृष्ण को, कोई क्राइस्ट को, कोई न कोई किसी न किसी को पकड़े है जोर से। और चिल्ला रहा है बचाओ, कहीं मैं खो न जाऊं। और नीचे परमात्मा प्रतीक्षा कर रहा है कि तुम कब थकोगे, तुम कब थक जाओगे, कब तुम्हारे हाथ छूट जाएंगे। और जिस दिन आदमी टोटली हेल्पलेस, पूरी तरह असहाय हो सब छोड़ देता है। उस दिन अचानक पाता है, जिसे पुकारा था वह निकट मौजूद है, जिसके लिए चिल्लाए थे, वह दूर न था और जिसे हम खोजते थे, उसे हमने कभी खोया नहीं।
इसलिए जब मुझसे कोई पूछता है कि ईश्वर को कैसे खोजें। तो मैं उससे दूसरा सवाल पूछता हूंः तुमने उसे खोया कैसे? वह कहता हैः मैंने तो खोया नहीं। तो फिर मैं कहता हूंः खोजने का कोई सवाल नहीं है। खोजते उसे हैं, जिसे हम खो देते हों। उसे खोजने का तो कोई सवाल नहीं, जिसे हम खो ही नहीं सकते। ईश्वर का होने का अर्थ है, हमारा होना, बी वेरी बीइंग, वह जो हमारा अस्तित्व है, वही तो परमात्मा है, उसे हम कैसे खो सकते हैं?

जैसे सागर में कोई मछली पूछने लगे दूसरों से कि सागर कहां है। ऐसे ही
हम पूछते फिरते हैं; परमात्मा कहां है, परमात्मा कहां है, उसी में जन्मते हैं, उसी में जीते हैं, उसी में होते हैं, उसी में मिटते हैं, वही है हमारी भीतर आने वाली श्वास, वही है हमारी बाहर जाने वाली श्वास, वही है हमारा बचपन, वही है हमारा बुढ़ापा, वही है जन्म, वही है मृत्यु। वह जो सागर का, अस्तित्व का, वह जो एक्झिस्टेंस है, वही है। हम उसे कहां खोजते हैं। लेकिन जब हम पकड़ लेते हैं कुछ। तो जो नीचे मौजूद है, वह मौजूद होते हुए भी खो जाता है। क्लीगिंग, वह जो दिमाग की पकड़ है शब्दों की, शास्त्रों की, सिद्धांतों की, वह परमात्मा से रोक लेती है।
इसलिए मेरी कोई धारणा नहीं है परमात्मा की और न मैं ऐसा सोच पाता हूं
कि धारणा से कोई कभी वहां पहुंच सकेगा। और परमात्मा के सामने जाना हो, तो "मैं" की हैसियत में भी वहां नहीं जा सकते हैं। बहुत पहले उसके मंदिर के बाहर ही, जहां हम जूते उतार आते हैं, वहीं अपने को भी उतार आना पड़ता है। और जब हम खाली, एक शून्य की भांति, एक निर्जन एकांत की भांति, जिसके भीतर न कोई विचार है, न खुद का कोई होना है, जिस दिन हम शून्य और खाली उसके मंदिर में प्रविष्ट होते हैं उस दिन हम पाते हैं, उसका मंदिर सब जगह था, हम व्यर्थ ही भटके, खोजे और परेशान हुए। हम व्यर्थ ही हैरान हुए, वह सदा ही उपलब्ध था। मेरी कोई धारणा नहीं है, क्योंकि उसके सामने मेरे होने का ही कोई अर्थ नहीं है। मेरा कोई विचार नहीं है, क्योंकि विचार से पाने का उसे कोई उपाय नहीं है। डूबना है। डूबने में विचार भी खो जाते हैं, स्वयं भी खो जाता हूं। ईश्वर की धारणा पर सोचना ही मत। और अगर ईश्वर की धारणा पर सोचना हो, तो अनंत जीवनों तक भी सोचते रह सकते हैं, लेकिन कहीं पहुंचेंगे नहीं। और जिस दिन पहुंचना हो, उस दिन सोचना मत। तो एक क्षण में एक क्षण भी बहुत बड़ा है, क्षण के भी शायद एक करोड़वें हिस्से में शायद वह भी बहुत बड़ा है, शायद जरा भी देर नहीं लगती, जरा भी समय नहीं लगता और हम वहां पहुंच जाते हैं।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, इस आशा से कि किनारे पर नहीं बैठे रहेंगे और सागर में डूब जाएंगे।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का दर्शन
छठवां प्रवचन

स्वतंत्रता के सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक अत्यंत वीरानी पहाड़ी सराय में मुझे ठहरने का मौका मिला था। संध्या सूरज के ढलते समय जब मैं उस सराय के पास पहुंच रहा था, तो उस वीरान घाटी में एक मार्मिक आवाज सुनाई पड़ रही थी। आवाज ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे किसी बहुत पीड़ा भरे हृदय से निकलती हो। कोई बहुत ही हार्दिक स्वर में, बहुत दुख भरे स्वर में चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। और जब मैं सराय के निकट पहुंचा, तो मुझे ज्ञात हुआ, वह कोई मनुष्य न था, वह सराय के मालिक का तोता था, जो यह आवाज कर रहा था।
मुझे हैरानी हुई। क्योंकि मैंने तो ऐसा मनुष्य भी नहीं देखा जो स्वतंत्रता के लिए इतने प्यास से भरा हो। इस तोते को स्वतंत्र होने की ऐसी कैसी प्यास भर गई? निश्चित ही वह तोता कैद में था, पिंजड़े में बंद था। और उसके प्राणों में शायद मुक्त हो जाने की आकांक्षा अंकुरित हो गई थी। उसके पिंजड़े का द्वार बंद था। मेरे मन में हुआ उसका द्वार खोल दूं और उसे उड़ा दूं, लेकिन उस समय सराय का मालिक मौजूद था, और उसके कैदी को मुक्त होना शायद वह पसंद न करता। इसलिए मैं रात की प्रतीक्षा करता रहा। रात आने तक उस तोते ने कई बार वही आवाज स्वतंत्रता की, वही पुकार लगाई। जैसे ही रात हो गई और सराय का मालिक सो गया, मैं उठा, और मैंने जाकर उस तोते के पिंजड़े के द्वार खोल दिए। सोचा था मैंने, द्वार खोलते ही वह उड़ जाएगा खुले आकाश में, लेकिन नहीं, द्वार खुला रहा और वह तोता अपने पिंजड़े के सींकचों को पकड़े हुए चिल्लाता रहाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। तब मेरी कुछ समझ में बात नहीं आई, क्या उसे खुला हुआ द्वार दिखाई नहीं पड़ रहा है? सोचा, शायद बहुत दिन की आदत के कारण खुले आकाश से वह भयभीत होता हो। तो मैंने हाथ डाला और उस तोते को बाहर खींचने की कोशिश की। लेकिन नहीं, उसने मेरे हाथ पर हमले किए, चिल्लाता वह यही रहाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। लेकिन अपने पिंजड़ों के सींकचों को पकड़े रहा और छोड़ने को राजी न हुआ। बहुत कठिनाई से उसे बाहर मैंने निकाल कर उड़ा दिया और यह सोच कर कि एक आत्मा मुक्त हुई, एक पिंजड़ा टूटा, एक कारागृह मिटा। मैं निश्चिंत होकर सो गया।
सुबह जब मैं उठा तो मैंने देखा, वही आवाज फिर गूंज रही है। बाहर आया, देखता हूं, तोता अपने पिंजड़े में भीतर बैठा है, सींकचे पकड़े हुए है, द्वार खुला है और वह चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। तब बात बहुत बेबूझ हो गई, समझ के बाहर हो गई, क्या यह तोता स्वतंत्रता चाहता था या कि स्वतंत्रता की बात ऐसे ही पुकारे चले जा रहा था? शायद यह स्वतंत्रता की बात भी उसने अपने मालिक से सीख ली थी। उसी मालिक से जिसने उसे पिंजड़े में बंद किया हुआ था। शायद यह उसके अपने हृदय की आवाज न थी। शायद उसके अपने प्राणों की प्यास न थी। उधार थी यह आवाज, अन्यथा उसका जीवन विपरीत नहीं हो सकता।
उस तोते को कभी नहीं भूल पाया हूं। और जब भी कोई मनुष्य मुझे मिलता है
तो उस तोते का स्मरण फिर दिला देता है।
हर आदमी मुक्त होने की कामना से प्रेरित दिखाई पड़ता है। हर आदमी स्वतंत्र होने की आकांक्षा से उद्वेलित मालूम होता है। हरेक के प्राण में कारागृह के बाहर निकल जाने की तीव्र अभीप्सा मालूम होती है। और हरेक का हृदय चिल्लाता रहता है जीवन भरः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। लेकिन मैं बहुत हैरान हूं। जो व्यक्ति यह स्वतंत्रता की पुकार लगाए जाता है वही पिंजड़ों के सींकचों को पकड़े हुए है। उसके द्वार भी कोई खोल दे तो बाहर उड़ने को राजी नहीं है। ऐसी मनुष्य की दशा है।
इस तोते की घटना से इसलिए ही शुरू करना चाहता हूं, सारी पृथ्वी पर मनुष्य की दशा यही है। वे जो मुक्ति का आकाश खोजना चाहते हैं, मनुष्य द्वारा निर्मित ही कारागृहों में बंद हैं। वे जो स्वतंत्रता की उड़ान भरना चाहते हैं, अपने ही हाथों से बनाई हुई दीवालों में कैद हैं। वे जिनके

प्राण गीत गाते हैं मुक्ति के, उनके हाथ उनकी ही जंजीरों को निर्मित करते रहते हैं। और इसका हमें कभी स्मरण भी नहीं हो पाता, इसका हमें कभी बोध भी नहीं हो पाता, अगर हमारी परतंत्रता किसी और के द्वारा निर्मित होती तो भी यह एक बात थी, हम खुद ही उसके निर्माता और स्रष्टा हैं।
इसलिए हम किससे पुकार रहे हैं हाथ जोड़ कर? हम किन मंदिरों में, किन परमात्माओं से प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि मुक्त कर दो? हम किनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हैं कि हमें स्वतंत्रता दे दो? जब कि परतंत्रता हमारे ही द्वारा निर्मित हो, जब कि हम ही उसके बनाने वाले हों, जब कि जिन बेड़ियों और जंजीरों में हम बंधे हों, वे हमने ही ढाली हों, हमने ही अपने प्राणों के रक्त से उन्हें सींचा हो, मजबूत किया हो, तो हम किसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं? कौन हमें स्वतंत्रता दे सकेगा जब परतंत्रता हम खुद ही निर्मित करते हैं? इसलिए स्वतंत्रता मांगनी उचित नहीं है।
उचित है इस सत्य को देखना कि हम परतंत्रता को कैसे निर्मित करते हैं। जिस दिन हमें यह दिखाई पड़ जाए, जिस दिन हमें यह सत्य का साक्षात हो जाए कि मैं ही हूं बनाने वाला अपनी कैद का, यह इनप्रिजनमेंट, यह कारागृह मेरी ही ईजाद, मेरा ही आविष्कार है, उस दिन ही, उस क्षण ही मुक्त होना आसान हो सकेगा। लेकिन शायद हमें दिखाई नहीं पड़ता, कोई बहुत अनूठे रास्तों से, अनजान रास्तों से हम अपने ही हाथों से अपने जीवन को कसते चले जाते हैं। एक छोटी घटना मुझे स्मरण आती है।
रोम में एक बहुत कुशल कारीगर था, एक बहुत बड़ा लोहार था। उसकी कुशलता
की प्रसिद्धि दूर-दूर के देशों तक थी। दूर-दूर के बाजारों में उसकी चीजें बिकतीं। दूर-दूर उसकी प्रशंसा होती। धीरे-धीरे बहुत धन उसके द्वार पर आकर इकट्ठा होने लगा। फिर रोम पर हमला हुआ। और दुश्मन ने आकर रोम को रौंद डाला। और रोम के सौ बड़े नागरिकों को बंदी बना लिया। उन सौ बड़े नागरिकों में वह लोहार भी एक था। उन सबके हाथों में जंजीरें पहना दी गईं और पैरों में बेड़ियां डाल दी गईं, और उन्हें एक दूर पहाड़ी घाटियों में फिंकवा दिया गया मरने को, मृत्यु की प्रतीक्षा करने को। सौ नागरिकों में निन्यानबे नागरिक रो रहे थे, उनकी आंखें आंसुओं से भरी थीं, और प्राण चिंता और व्याकुलता से, लेकिन वह लोहार निश्चिंत मालूम होता था। न उसकी आंखों में आंसू थे, न उसके चेहरे पर उदासी थी, उसे खयाल था इस बात का, मैं जीवन भर खुद लोहे की कड़ियां बनाता रहा हूं, तो कड़ियां कितनी ही मजबूत हों, मैं उन्हें खोलने का कोई न कोई उपाय जरूर खोज लूंगा। बहुत कुशल था वह कारीगर, निश्चिंत था इसलिए, आश्वस्त था कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है। जैसे ही मुझे फेंक कर कैदी की तरह घाटी में सैनिक लौट जाएंगे, मैं कड़ियां खोल लूंगा।
और उसे फेंक कर सैनिक वापस लौटे, तो उसने पहला काम अपनी कड़ियों को देखने का किया। लेकिन जंजीर को देखते ही, बेड़ी को देखते ही उसकी आंखें आंसुओं से भर गईं और उसने अपने बंधे हुए हाथों से अपनी छाती पीट ली और रोने लगा। क्या दिखाई पड़ गया उसे जंजीर पर? एक बड़ी अजीब बात जिसकी उसने जीवन में कभी कल्पना भी न की थी। उसकी आदत थी, वह जो भी बनाता था, जो भी चीज तैयार करता था उसके कोने तरफ में हस्ताक्षर कर देता था। कड़ी जब उसने देखी, पैर की जंजीर जब देखी, तो पाया, उसके हस्ताक्षर हैं। वह उसकी ही बनाई हुई जंजीर थी। जो दूर बाजारों में बिक कर वापस लौट आई थी दुश्मन के हाथों। और अब, अब वह घबड़ा गया था। अब जंजीर को तोड़ना बहुत कठिन था, क्योंकि उसे पता था कमजोर चीज बनाने की उसकी आदत ही नहीं थी। परिचित था इस कड़ी से, इस जंजीर से। कमजोर चीज बनाने की उसकी आदत नहीं रही, उसने तो मजबूत से मजबूत चीजें बनाई थीं। उसे कब खयाल था कि अपनी ही बनाई हुई जंजीरें किसी दिन अपने ही पैरों पर पड़ सकती हैं। यह तो कभी सपना भी न देखा था। कोई भी आदमी कभी यह सपना नहीं देखता कि जो कारागृह मैं बना रहा हूं उनका अंतिम बंदी मैं ही होने को हूं। कोई कभी यह नहीं देखता कि जो जंजीरें मैं निर्मित करता हूं, वे मेरे ही हाथों पर पड़ जाएंगी। कोई इस बात की कल्पना भी नहीं करता, दूर खयाल भी इस बात का नहीं आता कि पूरे जीवन में मैं जो जाल रच रहा हूं, मैं ही उसमें फंस जाऊंगा।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, हर आदमी उसी जाल में फंस जाता है जिसका वह निर्माता है। और तब, तब वह चिल्लाता है और हाथ जोड़ता है और परमात्मा से प्रार्थनाएं करता है, व्रत-उपवास करता है, पूजा-अर्चना करता है, गिड़गिड़ाता है, घुटने टेक कर जमीन पर खड़ा होता आकाश की तरफ आंखें उठाता है--मुझे मुक्त कर दो, मुझे स्वतंत्र कर दो। लेकिन कौन करेगा स्वतंत्र? कोई आकाश से उतरेंगे देवता? कोई ईश्वर आएगा स्वतंत्र करने? जब परतंत्र होना चाहा था तब किससे पूछने हम गए थे? और किस परमात्मा से हमने प्रार्थना की थी? और किस मंदिर के द्वार पर हमने घुटने टेके थे? और किससे हमने पूछा था कि मैं परतंत्र होना चाहता हूं मुझे जंजीरें बनाने का रास्ता बता दो? किसी से भी नहीं, तब हम अपने से ही पूछ कर ये सब कुछ कर लिए थे। और स्वतंत्रता के लिए दूसरे के द्वार पूछने जाते हैं? और इसमें न हमें शर्म आती है और न यह खयाल आता है कि कैसी विक्षिप्त है यह बात। परतंत्रता अपनी निर्मित है तो स्वतंत्रता भी अपनी ही निर्मित करनी होगी। कोई प्रार्थना नहीं काम करेगी, कोई साथ नहीं देगा, कोई हाथ आकाश से नीचे नहीं उतरेगा कड़ियां खोलने को, अपने ही हाथों से जो बांधा है उसे खोलने पड़ेगा।
वह लोहार रोता रहा, छाती पीटता रहा, छोड़ दी उसने आशा जीवन की, अब बचने
की कोई उम्मीद न थी। एक लकड़हारा बूढ़ा उस रास्ते से निकलता था, उसने पूछा, क्यों रोते हो? उस लोहार ने अपने दुख की कथा कही। उसने कहा, मैं सोचता था कि मुक्त हो सकूंगा इन जंजीरों से, लेकिन ये जंजीरें मेरी बनाई हुई हैं और बहुत मजबूत हैं। और अब, अब कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता है।
वह बूढ़ा हंसने लगा और उसने कहा, इतने निराश हो जाने का कोई कारण नहीं। अगर ये जंजीरें किसी और की बनाई हुई होतीं, तो निराश होने का कारण भी था, ये तुम्हारी ही बनाई हुई हैं। और स्मरण रखो, बनाने वाला जिन चीजों को बनाता है उनसे हमेशा बड़ा होता है। स्रष्टा सृष्टि से बड़ा होता है; निर्माता निर्मित से बड़ा होता है। तुमने जो बनाया है तुम उससे बड़े हो। और इसलिए घबड़ाओ मत, जो तुमने बनाया है उसे तोड़ने की सामर्थ्य हमेशा तुम्हारे भीतर है, घबड़ा गए तो चूक जाओगे, फिर मुश्किल हो जाएगी। और स्मरण रखो, कड़ियां कितनी ही मजबूत हों, जंजीरें कितनी ही मजबूत हों, जहां जंजीर जोड़ी जाती है वह एक कड़ी हमेशा कमजोर रह जाती है, उस पर जोड़ होता है जो खुल सकता है। इसलिए घबड़ाओ मत, धैर्य से काम लो। इतने कुशल कारीगर हो, बेड़ियां बनाने में इतने कुशल थे, तो यह क्यों भूल जाते हो कि खोलने में भी वह कुशलता काम आ सकती है। जो आदमी गांठ बांधना जानता है, वह बांधते ही उसको खोलना भी जान जाता है, सीख जाता है। हर व्यक्ति अपनी परतंत्रता निर्मित करता है, अगर उसे ठीक से देखे तो उसे खोलने का मार्ग भी उसके पास है।
एक दिन सुबह बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के पास बोलने की बजाय एक प्रश्न उपस्थित कर दिया था। जब वे आए थे बोलने को भिक्षुओं के बीच, तभी लोगों को हैरानी हुई थी, वे अपने हाथ में एक रेशमी रूमाल लिए चले आते थे। अब तक कभी वे कुछ लेकर न आए थे। सभी भिक्षु देखने लगे थे कि रेशमी रूमाल क्यों वे अपने हाथ में ले आए हैं? और आकर बैठ कर उन्होंने बिना कुछ बोले उस रेशमी रूमाल में एक गांठ बांध दी थी। भिक्षु देखते रहे थे। और तब पूछा था उन भिक्षुओं से कि मैं इस गांठ को खोलना चाहता हूं, और उस रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर खींचा था और पूछा था, क्या खींचने से यह गांठ खुल जाएगी?
एक भिक्षु खड़ा हुआ, उसने कहाः कैसी नासमझी की बात करते हैं आप, खींचने
से तो गांठ और बंध जाएगी।
तो बुद्ध ने पूछाः कैसे खोलूं इस गांठ को?
एक भिक्षु खड़ा हुआ और उसने कहाः रूमाल मुझे दें, मैं ठीक से देख लूं, कैसे बांधा है इस गांठ को? क्योंकि बांधने की जो विधि है वही खोलने की विधि है। बांधना और खोलना एक ही चीज को दो तरफ से देखने के ढंग हैं। परतंत्रता की जो विधि है, स्वतंत्रता की भी विधि वही है। उलटी तरफ से, दूसरे छोर से। इस दूसरे छोर से परतंत्रता की, स्वतंत्रता की तरफ जाने की मार्ग पर आज सुबह मैं थोड़ी बात आपसे करना चाहता हूं।
पहली बात, पहली कड़ी, पहली जंजीर, पहली गांठ जो हर मनुष्य ने अपने ऊपर बांध ली है, वह है अंधश्रद्धा की, अंधेपन की, आंख बंद कर लेने की, अनुकरण की,

फॉलोइंग की, किसी के पीछे जाने की, किसी का अनुयायी होने की। अनुयायी होना परतंत्रता की पहली जंजीर है। और हम सब किसी न किसी के अनुयायी हैं, किसी न किसी के फॉलोअर हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई कम्युनिस्ट है, कोई कुछ और है। लेकिन ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो यह कहे कि मैं हूं और किसी का अनुयायी नहीं, अकेला हूं। जैसा हूं वही हूं, किसी के अनुकरण के पीछे पागल नहीं हूं। ऐसा अगर कहीं कोई मनुष्य खोजने मिल जाए, तो समझ लेना स्वतंत्रता की तरफ उसने पहला कदम उठा लिया है। मनुष्य का चित्त परतंत्र है अंधानुकरण से। हम किसी न किसी का अनुकरण कर रहे हैं, इमिटेशन कर रहे हैं, इमिटेट कर रहे हैं। कोई महावीर को, कोई बुद्ध को, कोई राम को, कोई कृष्ण को, कोई क्राइस्ट को, कोई मोहम्मद को, लेकिन कोई भी आदमी खुद होने को राजी नहीं है कोई और होना चाहता है। यह उसकी परतंत्रता की शुरुआत है। वह अपने व्यक्तित्व की जगह किसी और का व्यक्तित्व ओढ़ लेना चाहता है। और किसी और का व्यक्तित्व उसके व्यक्तित्व पर परतंत्रता की गांठ बन जाएगा।
स्मरण रहे, कोई मनुष्य अपने अतिरिक्त और कोई भी कभी नहीं हो सकता है।
आज तक जमीन पर दो मनुष्य एक जैसे हुए हैं? राम को हुए कितने दिन हो गए, कोई दूसरा राम फिर हो सका है? महावीर को हुए कितना समय बीता, कोई दूसरा महावीर फिर दिखाई पड़ा? नहीं, लेकिन ढाई हजार वर्षों में महावीर के बाद क्या आप सोचते हैं, लाखों लोगों ने महावीर बनने की कोशिश नहीं की है? कोशिश जरूर की है। लेकिन एक भी सफल नहीं हुआ। और नहीं सफल हो सकता है।
प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है, यूनीक है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे की कार्बनकापी न है और न हो सकता है। इस होने की कोशिश में बंध जाएगा। यह होने की कोशिश उसका बंधन बनेगी। और तब फिर, तब फिर राम तो नहीं बन सकता, रामलीला का राम जरूर बन सकता है। और जमीन रामलीला के रामों से बहुत परेशान है। राम तो ठीक हैं, बहुत अदभुत हैं, लेकिन रामलीला के राम के साथ क्या करें? यह आदमी झूठा है। और यह रामलीला का आदमी पाखंड है। यह असत्य है। यह ऊपर से ओढ़े है किसी बात को जो यह भीतर नहीं है और नहीं हो सकता है। यह जो विरोध ही इसने अपने ऊपर से ओढ़ लिया है यही इसकी कारागृह है, यही इसका कैद है, यही इसका बंधन है। यह हमेशा पीड़ित और परेशान होगा। और जितना यह रामलीला का राम बनता जाएगा उतना ही इसकी जकड़ गहरी होती जाएगी, इसकी कड़ियां मजबूत होती चली जाएंगी। और भीतर इसके प्राण छटपटाएंगे वही होने को जो यह होने को पैदा हुआ था, जो इसकी आत्मा थी वही होने को इसके प्राण आकांक्षा से भर उठेंगे। प्राण भीतर कहेंगे, स्वतंत्रता चाहिए और यह रामलीला का राम, राम के वस्त्रों को ओढ़ कर कसता चला जाएगा। और भूल जाएगा इस बात को कि राम होने की मेरी कोशिश ही मेरा बंधन है। जब भी कोई आदमी किसी और जैसा होना चाहता है तो वह अपना कारागृह निर्मित कर रहा है, वह अपनी जंजीरें तैयार कर रहा है। यह कभी नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा हो जाए।
इसीलिए तो हम कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के पास आत्मा है। मशीन एक जैसी हो सकती हैं, क्योंकि मशीनों के पास कोई आत्मा नहीं है। फोर्ड की मोटरें एक जैसी निकल सकती हैं लाखों, उनके पास कोई आत्मा नहीं है। आत्मा है व्यक्तित्व, आत्मा है इंडिविजुअलिटी, आत्मा है अद्वितीयता। और प्रत्येक व्यक्ति जिसके पास आत्मा है वह कभी किसी दूसरे जैसा नहीं हो सकता। होने की कोशिश में उसकी आत्मा यांत्रिकता में जकड़ जाएगी। लेकिन हम सबको यही सिखाया जा रहा है बचपन से कि राम जैसे बनो, कृष्ण जैसे बनो। और हम सोचते हैं ये आदर्श हमारे जीवन को मुक्त करते हैं? ये ही आदर्श हमारे जीवन को बांधे हुए हैं। ये ही हैं हमारी गुलामी। और अगर पुराने आदर्श फीके पड़ जाते हैं तो नये महापुरुष हमें रोज मिल जाते हैं, फिर तो हम कहते हैंः गांधी जैसे बनो, विवेकानंद जैसे बनो।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, कभी किसी जैसे बनने की कोशिश मत करना। अगर किसी जैसे बनने की कोशिश की, तो फिर आपके जीवन में स्वतंत्रता संभव नहीं है। और जहां स्वतंत्रता न हो, वहां सत्य की भी कोई संभावना नहीं है। स्वतंत्रता है द्वार सत्य का। वे ही जो स्वतंत्र हैं, वे जान पाते हैं कि सत्य क्या है। और वे जो अपनी आत्मा को भी नहीं पहचान पाते और दूसरे की होने की नकल में पड़ जाते हैं, वे कैसे जान पाएंगे परमात्मा को? वे अपने को ही

नहीं जान पाते, वे अपने को होने को राजी ही नहीं हो पाते। यह भी हो सकता है इस दौड़ में, दूसरे जैसे हो जाने की दौड़ में यह हो सकता है कि आप सफल भी हो जाएं, सारी दुनिया कहे कि यह आदमी सफल हो गया। देखो, बिल्कुल, बिल्कुल गांधी की कॉपी है, बिल्कुल गांधी जैसा हो गया है। देखो, बिल्कुल, बिल्कुल महावीर जैसा, बुद्ध जैसा मालूम पड़ता है। वे ही वस्त्र हैं, उन जैसा ही नग्न खड़ा है, उन जैसा ही उपवास करता है, उन जैसा ही चलता है, उन जैसा ही बोलता है, उन जैसा ही उठता-बैठता है। कोई इतनी कुशलता से अनुकरण कर सकता है, इतनी कुशलता से अभिनय कर सकता है कि यह भी हो सकता है कि महावीर का अभिनय करने वाला अगर महावीर के सामने ले जाया जाए तो महावीर उससे हार जाएं। यह भी हो सकता है। यह इसलिए हो सकता है कि असली आदमी से भूल-चूक भी हो सकती है, अभिनेता भूल-चूक भी नहीं करता। जिंदगी में असली आदमी गलत कदम भी रख सकता है, क्योंकि असली आदमी किसी पैटर्न के आधार पर नहीं जीता, किसी ढांचे पर नहीं जीता। असली आदमी अपनी स्वतंत्रता से जीता है। उसके पैर भूल-चूक में भी ले जा सकते हैं। उसके पैर में कांटे भी गड़ सकते हैं। वह आदमी पैर आगे बढ़ा कर खींच भी सकता है। असली आदमी किसी बंधे-बंधाए ढांचे से नहीं जीता। लेकिन नकली आदमी तो बिल्कुल प्लैंड, बिल्कुल आयोजना से जीता है। उससे भूल-चूक नहीं होती, वह कभी गलती नहीं करता। ऐसा एक बार हो चुका। ऐसी एक बहुत मजेदार घटना हुई।
चार्ली चैप्लीन को उसके मित्रों ने एक समारोह आयोजित किया, उसकी किसी वर्षगांठ पर। और उसके मित्रों ने चाहा कि एक कोई अनूठा आयोजन हो। तो उन्होंने सारे यूरोप में एक प्रतियोगिता करवाई। कोई आदमी चार्ली चैप्लीन का पार्ट करे, चार्ली चैप्लीन का अभिनय करे। और सारे यूरोप से सौ प्रतियोगी चुने जाएंगे और फिर लंदन में बड़ी प्रतियोगिता होगी। उसमें जो तीन प्रतियोगी जीत जाएंगे, उनको बड़े पुरस्कार इंग्लैंड की महारानी देंगी।
बहुत बड़ा आयोजन हुआ। सारे यूरोप में नाटक खेले गए। और हजारों अभिनेताओं ने चार्ली चैप्लीन का पार्ट किया। सौ अभिनेता चुने गए। चार्ली चैप्लीन ने अपने मन में सोचा, क्यों न एक मजाक किया जाए, मैं भी झूठा फार्म भर कर दूसरे के नाम से भरती हो जाऊं, और इतना तो तय है कि मैं जीत जाऊंगा, इसमें कोई शक की बात नहीं। पहला पुरस्कार भी मिलेगा। बाद में बात खुलेगी तो सारी दुनिया हंसेगी कि खूब मजाक हुआ।
तो वह सम्मिलित हो गया। एक छोटे गांव से, एक छोटे गांव में अभिनय करके
वह सम्मिलित हो गया एक दूसरे नाम से। प्रतियोगिता हुई और मजाक जितना सोचा था चार्ली चैप्लीन ने उससे ज्यादा हो गया, उसको दूसरा पुरस्कार मिला। पहला पुरस्कार कोई दूसरा अभिनेता ले गया। और जब बात खुली कि चार्ली चैप्लीन खुद भी था मौजूद सम्मिलित, तो सारी दुनिया हंसी कि यह तो हद्द हो गई कि चार्ली चैप्लीन का अभिनय करने में दूसरा आदमी चार्ली चैप्लीन से जीत गया!
तो मैं आपसे निवेदन करता हूं, महावीर का अभिनय करने में भी यह हो सकता है। बुद्ध के अभिनय करने में भी यह हो सकता है। लेकिन फिर भी जानना जरूरी है महावीर का अभिनेता महावीर से जीत जाए तो भी महावीर के आनंद को, आत्मा को, मुक्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता। उसकी जीत अनुकरण की जीत होगी, अभिनय की जीत होगी, आत्मा की नहीं। उसकी आत्मा तो तड़फड़ाएगी भीतर, उसकी आत्मा तो बेचैन होगी, वैसी ही बेचैन होगी जैसे हम किसी बगीचे में चले जाएं और फूलों को समझाएं कि गुलाब तुम जुही जैसे हो जाओ; चंपा को कहें, तुम चमेली जैसे हो जाओ; इस फूल को कहें, उस फूल जैसे हो जाओ।
पहली तो बात यह है कि फूल सुनेंगे नहीं, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं कि हर किसी की बात सुनें। बिल्कुल नहीं सुनेंगे। अपनी मौज से झूलते रहेंगे हवा में। उपदेशक चिल्लाता रहेगा, न वे ताली बजाएंगे, न फिकर करेंगे। लेकिन यह भी हो सकता है, आदमी की सोहबत में रहते-रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों, आदमी की सोहबत में बिगड़ जाते हैं। जंगल के जानवर बीमार नहीं होते, आदमी की सोहबत में रहते हैं, वही बीमारियां उनको होने लगती हैं जो आदमी को होती है। तो आदमी की सोहबत, आदमी का सत्संग। हो सकता है कुछ फूल बिगड़ गए

हों उसकी बगिया में रहते-रहते और राजी हो जाएं और चमेली चंपा होने की कोशिश करने लगे, और गुलाब जुही बनने लगे, उस बगिया में फिर क्या होगा? उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब लाख कोशिश करे तो चमेली नहीं हो सकता, जुही नहीं हो सकता। वह बीज उसके प्राणों में नहीं, वह आत्मा नहीं उसकी, वह उसका व्यक्तित्व नहीं। लेकिन इस कोशिश में कि गुलाब जुही बन जाए, कि जुही चंपा बन जाए, कि चंपा चमेली बन जाए, इस कोशिश में गुलाब में गुलाब के फूल तो पैदा नहीं हो सकेंगे, और चमेली के फूल भी पैदा नहीं हो सकते। क्योंकि सारी शक्ति चमेली होने में लग जाएगी, जो शक्ति गुलाब बनती है वह चमेली होने की कोशिश में व्यर्थ हो जाएगी। चमेली तो नहीं पैदा होगी, गुलाब भी फिर पैदा नहीं होगा। वह ताकत न बचेगी जिससे गुलाब पैदा हो सकता था। वह बगिया उजाड़ हो जाएगी, अगर किसी धर्मगुरु की बातें कोई बगिया सुन ले, तो फिर उसमें फूल पैदा नहीं हो सकते। आदमी की बगिया ऐसे ही उजाड़ हो गई, उसमें फूल नहीं खिलते हैं। आदमी बेरौनक हो गया, उसकी सुगंध खो गई। कभी एकाध आदमी करोड़-करोड़ में अगर फूल बन जाता है, तो यह कोई बहुत शुभ बात है? अगर एक बगिया में हम हजार पौधे लगाएं और एक फूल एक पौधे में खिल जाए, तो यह कोई माली के लिए सम्मान की बात है? अगर हजार दो हजार वर्षों में एक बुद्ध और एक महावीर और एक कृष्ण पैदा हो जाएं, तो यह कोई आदमी के लिए गौरव की बात है? और यह करोड़-करोड़ लोगों का जीवन व्यर्थ चला जाए, इनके जीवन में कोई फूल न खिले? इनके जीवन में फूल क्यों नहीं खिलते?
मैं आपसे निवेदन करता हूं, इन्होंने उपदेशक की बातें सुन ली हैं इसलिए इनके जीवन में फूल नहीं खिलेंगे। इन्होंने कुछ और होने की कोशिश शुरू कर दी है। इस कुछ और होने की कोशिश में यह कुछ और तो कभी नहीं हो पाते, लेकिन जो पैदा हुए थे होने को, वह होने की क्षमता और संभावना ही समाप्त हो जाती है।
मनुष्य के ऊपर पहला बंधन है, अंधानुकरण का। अंधे होकर अपने ऊपर किसी
को थोप लेने का, अंधे होकर कुछ और बन जाने का। पहली स्वतंत्रता है इसलिए, स्वयं होने की कोशिश; पहली स्वतंत्रता है इसलिए, स्वयं की स्वीकृति; पहली स्वतंत्रता है इसलिए, इस बात की खोज कि क्या मेरे भीतर छिपा है? और किन मार्गों से, किन दिशाओं में वह व्यक्त होना चाहता है? क्या मेरे भीतर गुलाब पैदा होने को है या कि जुही? या कि घास का एक फूल? और स्मरण रखें, घास एक छोटा सा फूल भी जब अपने पूरे सौंदर्य में खिल जाता है, तो उसका आनंद किसी गुलाब से कम नहीं होता। एक घास का छोटा सा फूल भी जब अपने पूरे सौंदर्य में, अपने पूरे प्राणों से प्रकट हो जाता है और हवाओं में झूल उठता है, तब उसका सौंदर्य, उसका आनंद, उसकी आत्मा की लहर, उमंग किसी कमल से कम नहीं होती। यह आदमी के कंपेरिजन से कि वह कहता है, गुलाब अच्छा है और यह तो घास का फूल है। यह वही नासमझ आदमी, जो महावीर और बुद्ध होने की कोशिश में लगा है, यह उसी का वैल्युएशन है, यह उसी का मूल्यांकन है कि गुलाब अच्छा और यह तो घास का फूल है। लेकिन घास के खिले हुए फूल के प्राणों में घुसें, तो आप पाएंगे, वहां उतना ही आनंद है खिल जाने का, हो जाने का, अभिव्यक्त हो जाने का, प्रकट हो जाने का। जितना गुलाब के भीतर है, जितना कमल के भीतर है। वह आनंद गुलाब, कमल और चमेली और घास के फूल के कारण नहीं होता, वह होता है पूरी तरह खिल जाने के कारण, पूरी तरह प्रकट हो जाने के कारण।
जो व्यक्ति पूरी तरह नहीं प्रकट हो पाता, उसके भीतर एक बंधन और एक जकड़
रह जाती है। जीवन भर एक तड़पन, एक पीड़ा। जैसे कोई बीज फूटना चाहता हो, अंकुर बनना चाहता हो, लेकिन खोल इतनी मजबूत हो, लोहे की हो, कि तड़फड़ाते हों उसके प्राण भीतर, लेकिन खोल को न तोड़ पाते हों, तो कैसी दशा हो जाएगी उस अंकुर की? हर आदमी वैसी दशा में है। लोहे की खोल ओढ़े हुए हैं हम और भीतर तड़प रहा है कोई अंकुर प्रकट हो जाने को, जीवन के पल बीते जाते हैं, उम्र बीती जाती है, मौत करीब आई जाती है और खोल है कि टूटती नहीं। और हम हैं ऐसे कारीगर कि और खोल पर और लोहे की और पर्तें चढ़ाते चले जाते हैं, और आदर्श ओढ़ते चले जाते हैं, और अनुकरण करते चले जाते हैं, और सिद्धांत और शास्त्र, और न

मालूम उस खोल को कितना मजबूत करे चले जाते हैं। भीतर का अंकुर प्रकट नहीं हो पाता और मौत आ जाती है।
यही है पीड़ा मनुष्य की, यही है दुख, यही है उसका संताप। कौन करेगा इस संताप से मुक्त किसी को? कौन हाथ आएगा मुक्त करने को? कोई और हाथ नहीं, हमारे ही ये हाथ जो अनुकरण की भूल में कड़ियां गुंथ रहे हैं। इन हाथों को समझ से रुक जाना होगा और खोल देनी होंगी अनुकरण की कड़ियां और उठा देने होंगे खुले आकाश की तरफ हाथ और कह देना होगा सारे जगत को, मैं मैं होने को पैदा हुआ हूं, मैं कोई और होना नहीं चाहता।
जिस दिन कोई व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि मैं, चाहे घास
का फूल ही सही, मैं मैं ही होने को पैदा हुआ हूं। चाहे सड़क के किनारे पड़ा हुआ एक कंकड़ ही सही, लेकिन मैं मैं ही होने को पैदा हुआ हूं। न सही आकाश का तारा, न सही पारसमणी; सही धूल का एक कंकड़, लेकिन मैं मैं ही होने को पैदा हुआ हूं। इसे मैं स्वीकार कर लूं और जान लूं, तो शायद आकाश का एक तारा भी जिस आनंद को उपलब्ध होता है, राह के किनारे पड़ा हुआ एक कंकड़ भी जब खुद की स्वीकृति से खिल जाता है, उतने ही आनंद को उपलब्ध हो जाता है।
स्वयं की स्वीकृति स्वतंत्रता का पहला सूत्र है। और हम सब स्वयं को किए हुए हैं अस्वीकार। स्वयं के बने हुए हैं दुश्मन। दूसरे के हैं प्रशंसक, खुद के हैं शत्रु। दूसरे के हैं अनुयायी, और खुद के? खुद के खिलाफ तलवार लिए हुए खड़े हैं। खुद की हत्या को तैयार हैं, दूसरे बनने को हम तैयार हैं। कैसे? कैसे? कैसे हो सकती है मुक्ति की कोई संभावना? कोई गुंजाइश? कैसे खुल सकता है वह द्वार?
इसलिए पहला सूत्र निवेदन करना चाहता हूंः स्वयं होने की स्वीकृति। अंधानुकरण नहीं, आदर्श का आरोपण नहीं, किसी और जैसे होने का प्रयास नहीं, जो मैं हूं उसकी पूर्ण स्वीकृति। जो मैं हो सकता हूं, तब फिर उसकी खोज हो सकती है। फिर जो मैं हो सकता हूं, उस यात्रा पर गति हो सकती है। जब तक कोई किसी और के पीछे चल रहा है तब तक स्मरण रखें, तब तक वह कभी अपनी आत्मा तक नहीं आ सकता है। आत्मा के लिए जाना जरूरी है खुद के भीतर। और अनुयायी जाता है किसी और के पीछे। ये दोनों दिशाएं भिन्न हैं। अनुयायी जाता है किसी और के पीछे।
अनुयायी कभी धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति वह है जो जाता है स्वयं के भीतर। और स्वयं के भीतर जाना और किसी और के पीछे जाना, दो विरोधी दिशाएं हैं। इनका कोई मेल नहीं, ये कहीं मिलती नहीं। ये एकदम एक-दूसरे की तरफ पीठ की हुई दिशाएं हैं।
क्यों हम अनुकरण करना चाहते हैं? क्यों? क्यों हम किसी और जैसे हो जाना चाहते हैं? शायद इसलिए ही कि स्वयं होने का साहस नहीं जुटा पाते। स्वयं होने का सहजता नहीं जुटा पाते। स्वयं होने की स्वीकृति नहीं जुटा पाते।
क्यों नहीं जुटा पाते हैं? क्यों नहीं यह साहस कर पाते हैं कि हम कह सकें इस जगत को, निवेदन कर सकें कि मुझे मुझ जैसा रहने दो? कौनसा कारण है जिससे यह नहीं हो पा रहा? एक ही कारण है, वही हमारी दूसरी कड़ी है बंधन की। और वह यह है कि हमने कभी विचार ही नहीं किया। हम कभी विचार ही नहीं करते हैं। तो कैसे का सवाल ही नहीं उठता। हम कभी विचार ही नहीं करते। जीवन को पकड़ कर कभी हम सोचते नहीं। हम हमेशा किसी को पढ़ लेते हैं, किसी को सुन लेते हैं। लेकिन न तो पढ़ना सोचना है और न सुनना सोचना है। दोनों हालत में हम तो होते हैं निष्क्रिय, हम तो होते हैं पैसिव, कोई और कर रहा होता है सोचने का काम। कोई किताब लिखता है, कोई बोलता है। कोई और कर रहा है सोचने का काम, हम पैसिव, हम निष्क्रिय बैठे हुए सुन रहे हैं। कोई हमारे दिमाग में कुछ डाल रहा है और हम टोकरी की तरह बैठे हुए हैं कि वह डालता जाए, हम इकट्ठा करते चले जाएंगे। पूरी जिंदगी हमारी एक पैसिविटी है। रात को सिनेमा देख लेते हैं, कोई और नाच रहा है हम देख लेते हैं। रेडियो सुन लेते हैं, कोई गीत गा रहा है, हम सुन लेते हैं। अखबार पढ़ लेते हैं, कोई खबर ला रहा है, हम सुन लेते हैं। चौबीस घंटे हमारे भीतर कोई एक्टिव, कोई सक्रिय चेतना नहीं है, निष्क्रिय चेतना है।

निष्क्रिय चेतना के कारण अनुकरण पैदा होता है। निष्क्रिय चेतना सोचती है, कोई और ने कर लिया, मैं उसके पीछे चल जाऊं। किसी और ने पा लिया, मैं उसका पल्ला पकड़ लूं। किसी और को सत्य उपलब्ध हो गया, मैं उसके चरणों में सिर रख कर बैठ जाऊं। मैं हूं निष्क्रिय, मुझे कुछ करना नहीं है। किसी और ने कर लिया, मैं उसमें भागीदार बन जाऊं। निष्क्रिय चेतना हो गई है निरंतर। सक्रिय चेतना नहीं है। और सक्रिय चेतना तब तक नहीं होगी जब तक हम विचार करने को तैयार न हों। निष्क्रिय चेतना पैदा हो गई है विश्वास के कारण, सारी दुनिया में विश्वास के प्रचार के कारण निष्क्रिय चेतना पैदा हो गई है। सारी दुनिया पैसिव से पैसिव होती जा रही है, निष्क्रिय से निष्क्रिय। सक्रिय रूप से जीवन का हमारा कोई संबंध नहीं रहा। सब कुछ कोई और कर दे।
मैंने सुना है, पश्चिम के एक विचारक ने एक किताब लिखी। और उसने लिखा, बहुत जल्द वह समय आ जाएगा कि हम प्रेम करने के लिए भी नौकर रख लिया करेंगे। जरूर। कौन मुसीबत ले प्रेम करने की खुद। एक नौकर रख लिया करेंगे, तनख्वाह दे दिया करेंगे। वह जाकर जिससे हमें प्रेम हो उससे प्रेमपूर्ण बातें कह दिया करेगा, प्रेम कर लिया करेगा। उससे भी हम बच जाएंगे।
हंसी आती है हमें इस बात पर, लेकिन हमने प्रार्थना करने के लिए नौकर
रख लिए उस पर हंसी नहीं आती? मंदिर में एक पुजारी रख लिया है, जिसको हम तनख्वाह देते हैं कि तू प्रार्थना करना हमारे लिए। घर पर हम एक पुजारी को बुलाते हैं कि तू प्रार्थना कर प्रभु से हमारे लिए, हम तुझे पैसे देंगे। जब हम प्रार्थना करवा सकते हैं नौकर से, तो क्या कोई आश्चर्य है इस बात का कि यह आदमी कभी प्रेम भी करवा सकता है? प्रेम और प्रार्थना में कोई फर्क है? कोई भेद है? अगर हम परमात्मा और अपने बीच नौकर रख सकते हैं, तो क्या कठिनाई है कि हम प्रेयसी और अपने बीच नौकर न रख लें?
तो मत हंसिए इस बात पर। अगर हंसते हैं, तो फिर पुजारी को विदा कर दीजिए। इस पर हंसने की जरूरत नहीं है, यह हम करते रहे हैं, यह हम रोज कर रहे हैं। विश्वास ने, अंधे विश्वास ने विचार की सारी क्षमता छीन ली है।
इसलिए दूसरी कड़ी है, विचार करना अत्यंत जरूरी है। विचार का क्या मतलब? विचार से क्या संबंध? विचार का क्या अर्थ? क्या विचार का यह अर्थ है कि हम बहुत से विचार इकट्ठे कर लें तो हम विचारक हो जाएंगे? विचारों का संग्रह क्या हमें विचारक बना देगा? यह भ्रम पैदा हुआ है दुनिया में। कि हम बहुत से विचारों को इकट्ठा कर लें, बहुत से शास्त्रों को पी जाएं, सदियों में जो चिंतन हुआ है उसके हम संग्रहालय बन जाएं, वह हमारे दिमाग में सब इकट्ठा हो जाए, तो हम विचारक हो गए। एक आदमी जो वेद के वचन बोल देता है, एक आदमी जो उपनिषद की ऋचाएं उधृत कर देता है, एक आदमी जो गीता पूरी की पूरी कंठस्थ कर लेता, हम कहते हैं, विचारक है, ज्ञानी है। क्या विचार के संग्रह से ज्ञान का कोई भी संबंध हो सकता है? सच्चाई तो यह है कि जिस व्यक्ति के भीतर विचार की क्षमता जितनी कम होती है, उस विचार की क्षमता की कमी को भुलाने के लिए विचारों के संग्रह को इकट्ठा कर लेता है। ताकि यह अहसास उसे न हो इस अभाव का कि मेरे भीतर विचार नहीं है। और विचार का संग्रह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है, एकदम यांत्रिक प्रक्रिया है, मैकेनिकल बात है। अब तो हमने यांत्रिक मस्तिष्क बना लिए हैं, कंप्यूटर्स बना लिए हैं, जो हमारे सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। कोई जरूरत नहीं किसी पंडित को कि पूरी बाइबिल को याद करे। एक मशीन पूरी बाइबिल को याद कर लेती। और आप पूछ लीजिए कि ल्यूक के फलां-फलां अध्याय में, फलां-फलां सूत्र में क्या लिखा हुआ है? मशीन फौरन उत्तर छाप कर बाहर भेज देती है कि यह लिखा हुआ है। इस मशीन को विचारक कहिएगा?
शायद आपको पता न हो, कोरिया के युद्ध में अमेरिका ने जो निर्णय लिया चीन से युद्ध में न उतरने का, वह निर्णय किसी मनुष्य के मस्तिष्क ने तय नहीं किया, वह कंप्यूटर्स ने तय किया था। वह उन मशीनों ने तय किया, जिन मशीनों में सारी बातें डाल दी गईं। चीन की कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं, कितने बम हैं उसके पास। अमेरिका की कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं, वह सब जानकारी फीड कर दी गई, खिला दी गई उस मशीन को, और फिर पूछ लिया गया कि चीन से

युद्ध में उतरना ठीक है या नहीं? मशीन ने उत्तर दिया, बिल्कुल ठीक नहीं है। अमेरिका चीन से युद्ध में नहीं उतरा। वह निर्णय किसी मनुष्य-मस्तिष्क ने नहीं किया। यह पहला निर्णय है इतना बड़ा, जो कि मशीन के द्वारा लिया गया। मनुष्य-मस्तिष्क से कभी भूल भी हो सकती है, मशीन कभी भूल नहीं करती। इसलिए आने वाले दिनों में विचारकों से कोई पूछने न जाएगा, पक्का खयाल रखिए। मशीनें होंगी गांव-गांव में जिनसे हम पूछ लिया करेंगे कि क्या है ठीक उत्तर इस बात का? और हम भी क्या करते हैं? हमारा मस्तिष्क भी क्या करता है? इस मस्तिष्क को भी तो हमें भोजन देना पड़ता पहले--स्कूल में, कालेज में शिक्षा देनी पड़ती। सिखाना पड़ता इसको। बच्चा होता पैदा, हम उससे कहते, तुम्हारा नाम है, राम। तुम्हारा नाम है राम, तुम्हारा नाम है राम, सुनते- सुनते बच्चे का मस्तिष्क, मस्तिष्क की रिकॉर्डिंग पकड़ लेती इस बात को कि मेरा नाम है राम। फिर एक आदमी उससे पूछता है, तुम्हारा नाम? वह फौरन कहता है, मेरा नाम है, राम। आप सोचते हैं, इसमें विचार की कोई जरूरत पड़ी? कोई जरूरत नहीं पड़ी। इसमें विचार का कोई संबंध नहीं आया। यांत्रिक स्मृति ने पकड़ ली यह बात, राम। फिर उत्तर पूछा किसी ने, क्या है तुम्हारा नाम? वह कहता है, राम। उससे पूछो, भगवान है? अगर वह हिंदुस्तान में पैदा हुआ है और उसके दिमाग में यह बात डाली गई है, तो उससे पूछ लो अंधेरे में उठा कर भी, सोते में से कि भगवान है? वह कहेगा, है, बिल्कुल है। रूस में अगर वह पैदा हुआ होता, वहां सिखाया जाता, नहीं है। उसको उठा कर पूछते, भगवान है? वह कहता, नहीं है। ये दोनों उत्तर यांत्रिक हैं, इसमें विचार का कोई संबंध नहीं। जो सिखा दिया गया है वह बोला जाता है। जो सीखा हुआ ही बोल रहा है, वह आदमी विचारपूर्ण नहीं है। और हम सब सीखा हुआ ही बोल रहे हैं। अनसीखा हुआ हमारे भीतर एक भी तत्व नहीं है। अनसीखा, अनलर्न अगर हमारे भीतर कोई सूत्र पैदा होता है, उसका नाम विचार है।
तो विचार के संग्रह का नाम विचार नहीं है; विचार एक क्षमता है जीवन के प्रति अत्यंत जागरूक होने की। जीवन प्रतिक्षण समस्याएं खड़ी कर रहा है। प्रतिक्षण जीवन के आघात हमारे चित्त पर पढ़ रहे हैं। हमारे चित्त को उत्तर देने पड़ रहे हैं। क्या वे उत्तर हम सीखे हुए ही दे रहे हैं? अगर सीखे हुए दे रहे हैं तो समझ लेना कि अभी विचार का आपके भीतर जन्म नहीं हुआ। लेकिन क्या कभी हमारे भीतर से अनसीखे हुए उत्तर भी आते हैं? जब जीवन कोई प्रश्न खड़ा करता है, तो क्या हम तत्काल स्मृति में खोज कर उत्तर ले आते हैं या कि स्मृति को कहते हैं तुम चुप रहो, तुम मत बोलो, मुझे देखने दो समस्या को, मुझे समस्या से परिचित होने दो, मेरे पूरे चित्त को समस्या के साथ एक होने दो और फिर आने दो उत्तर को, वह उत्तर स्मृति से नहीं, वह उत्तर विचार से आया हुआ होगा।
सुभाष के एक बड़े भाई थे, शरदचंद। वे एक दिन एक ट्रेन में यात्रा करते थे, सुबह के कोई चार बजे होंगे, अंधेरी रात थी, वे उठे, बाथरूम में गए, नींद से उठे थे, मुंह पर पानी छिड़कते थे, घड़ी खुली थी, शायद नींद से भरा हुआ हाथ होगा, घड़ी छूट गई और संडास के रास्ते नीचे गिर गई।
आपकी घड़ी गिर गई होती, फिर आप क्या करते? शरदचंद ने चेन खींची, लेकिन चेन खींचते-खींचते और गाड़ी के रुकते-रुकते एक मील कम से कम पार हो गया होगा। रात अंधेरी, डरइवर, कंडक्टर भागे हुए, गॉर्ड आया। कहा कि मेरी घड़ी गिर गई, बहुत कीमती है। उन्होंने कहाः बड़ा मुश्किल है अब घड़ी को खोज पाना। एक मील दूर, वह न मालूम कहां गिरी होगी? छोटी सी चीज है, अंधेरी रात है, कहां हम उसे खोजेंगे? और ट्रेन कितनी देर रोकी जा सकती है? मुश्किल है यह बात।
लेकिन शरदचंद ने कहाः मुश्किल नहीं है। आदमी भगाएं, मैंने अपनी जलती हुई सिगरेट उसके पीछे डाल दी है। वह एक फीट के फासले पर मेरी जलती हुई सिगरेट अंधेरे में चमक रही होगी। उसके पास ही बहुत शीघ्र घड़ी मिल जाएगी। आदमी दौड़ाएं। आदमी दौड़ाया गया, वह घड़ी सच में ही एक फीट के फासले के बीच में ही मिल गई चमकती हुई जलती सिगरेट के!
शरदचंद ने, स्मृति से यह उत्तर नहीं आ सकता था, क्योंकि पहले कभी घड़ी नहीं गिरी थी और न सिगरेट डालने की कोई आदत थी। और न किसी किताब में ही यह

पढ़ा हुआ हो सकता था, क्योंकि किसी किताब में कहीं यह लिखा ही हुआ नहीं है कि आपकी घड़ी गिर जाए तो जलती हुए सिगरेट पीछे डाल देना। किसी शास्त्र में कहीं किसी में यह नहीं लिखा हुआ। यह मौका बिल्कुल नया था। चेतना के समझ अनूठी समस्या थी। स्मृति में कोई उत्तर इसके लिए हो नहीं सकता था। यह कोई पिछले अनुभव की बात न थी।
आप होते शायद घबड़ा गए होते। शायद चेन खींची होती, चिल्लाए होते कि मेरी घड़ी गिर गई। लेकिन वह घड़ी नहीं मिल सकती। क्योंकि आपकी चेतना ने उस समस्या के साथ कोई समन्वय स्थापित नहीं किया था। लेकिन शरदचंद ने, जलती सिगरेट डाली उसके पीछे। यह एक क्षण में ही हो गया, इसके लिए सोचने के लिए समय भी नहीं था। क्योंकि सोचने में बहुत समय जाया हो सकता है। सोचने में तो समय लगेगा, क्योंकि स्मृति में खोजना पड़ेगा, स्मृति का बड़ा संग्रह है। जैसे कि घर के तलघरे में बहुत सी चीजें भरी हों, वहां जाकर खोजने जाइएगा, तो समय लगेगा। अगर स्मृति में उत्तर खोजते, तो समय लगता, और समय में तो दूरी हो जाती है। लेकिन विचार तत्क्षण सजगता है। वह कोई खोज नहीं है जिसमें समय लगता हो। विचारक विचारशील नहीं होता, जिसको हम संग्रह के, संग्रह वाले को विचारक कहते हैं।
विचारक का अर्थ हैः जिसकी चेतना समस्याओं से सीधा साक्षात करने में समर्थ है। अक्सर तो उलटा होता है, जो विचारों से बहुत घिरे हैं, अगर उनसे आप उनकी किताब लिखी हुई बात पूछें, तो वे तत्क्षण उत्तर दे देंगे। लेकिन अगर जिंदगी कोई ऐसा मसला खड़ा कर दे--जैसा कि जिंदगी रोज खड़ी करती है--जो उनकी किताब में न लिखा हो, तो वे बिल्कुल भौचक्के खड़े रहे जाएंगे। प्रतीत होगा, उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। या फिर वे कोई ऐसा उत्तर देंगे जिसकी कोई संगति नहीं होगी। क्योंकि वह उनकी स्मृति से आएगा, जीवन के साथ सीधे साक्षात से नहीं।
एक बहुत बड़ा गणितज्ञ था। उसने ही सबसे पहले गणित के बाबत किताबें लिखी हैं। अनूठा उसका ज्ञान था गणित के संबंध में। जो कुछ जानकारी थी मनुष्य-जाति की सभी उसे ज्ञात थी। गणित का कोई ऐसा सवाल न था जो वह हल न कर सके। एक दिन सुबह छुट्टी के दिन अपने पत्नी और बच्चों के लेकर वह पहाड़ी के पास पिकनिक को गया हुआ था। बीच में पड़ता था एक बड़ा नाला। ऐसे बहुत गहरा नहीं था। उसकी पत्नी ने कहाः बच्चों को सम्हाल कर पार कर दो, कोई बच्चा डूब न जाए। उसने कहा, ठहरो, वह अपने साथ हमेशा एक फूटा रखता था नापने के लिए, वह गया उसने नदी को चार-छह जगह नापा, कितनी गहरी है। अपने बच्चों को नापा, कितने ऊंचे हैं। रेत पर हिसाब लगाया और कहाः बेफिकर रहो, बच्चों की औसत ऊंचाई नदी की औसत गहराई से ज्यादा है। जाने दो, कोई डूबने वाला नहीं। बच्चे एवरेज ऊंचे हैं। बच्चे गए, पत्नी क्या कर सकती थी, इतना बड़ा ज्ञानी था उसका पति, इतना बड़ा गणितज्ञ था, इतना शास्त्रीय था। पत्नियां हमेशा शास्त्रीय पति के सामने एकदम हार जाती हैं। कोई उपाय भी नहीं है। और पत्नियों ने शास्त्री होने की आज तक भूल नहीं की है। इसलिए उनसे कोई लड़ाई करने की गुंजाइश बनती नहीं है। उसे डर तो हुआ, लेकिन जब पति कहता है और हिसाब उसने लगा लिया और उसके हिसाब में कभी भूल-चूक होती नहीं, तो ठीक ही कहता होगा। इसलिए पांच-सात बच्चे, कोई बड़ा था, कोई छोटा, कोई बहुत छोटा। बड़ा तो एक निकल गया, बाकी छोटे उसमें डुबकी खाने लगे। उसकी पत्नी चिल्लाई कि छोटा बच्चा डुबा जाता है। लेकिन उस गणितज्ञ न क्या किया? उसने कहा, आं, क्या हिसाब में कोई भूल-चूक हो गई? वह भागा, बच्चा डूबता था, वह डूबता रहा, वह भागा नदी के किनारे जहां रेत पर उसने हिसाब किया था कि कोई भूल तो नहीं हो गई।
यह संग्रह वाले विचारक की मनःस्थिति है। जीवन को सीधा साक्षात नहीं करता, जीवन बच्चे को डुबाए दे रहा है, नदी बच्चे को डुबाए दे रही है, उसका प्राण लिए ले रही है। इस समस्या को भी वह गणित के माध्यम से साक्षात करता है, जो हिसाब उसने किया है नदी के किनारे, उसको देखने जाता है कि कोई भूल तो नहीं हो गई। क्योंकि डूबना नहीं चाहिए, अगर गणित ठीक है तो।
लेकिन किस पागल ने कब कहा कि जिंदगी गणित के हिसाबों से चलती है। जिंदगी कभी गणित के हिसाबों से नहीं चलती। और जिस दिन जिंदगी बिल्कुल

गणित के हिसाबों से चलेगी उस दिन आदमी में कोई आत्मा नहीं बचेगी। गणित के हिसाब से यंत्र चल सकते हैं। जिंदगी अनूठी है, अनजान रास्ते लेती है, कोई गणित के रास्ते उसके लिए निर्णीत नहीं हो सकते। और न ही तर्क के कोई रास्ते निर्णीत हो सकते हैं। और न ही सिद्धांतों की कोई बंधी हुई रेखाएं निर्णीत हो सकती हैं। लेकिन विचारों का संग्रह करने वाला पंडित इसी ढांचे में कैद होता है। इसलिए विचारों का संग्रह नहीं है विचार की क्षमता।
फिर क्या है विचार की क्षमता?
यह दूसरी कड़ी है, हमने विचारों के संग्रह को समझ रखा है कि हम विचारशील हैं। यह हमारी गुलामी है। इसको तोड़ देना होगा।
स्वतंत्रता के लिए जानना होगा कि विचारों का संग्रह नहीं, बल्कि कोई
और चीज है जिसका नाम विचार है, जिसका नाम विवेक है। वह कौनसी चीज है? वह मैं तीसरी कड़ी के भीतर आपसे बात करना चाहता हूं।
किस चीज को मैं विचार कहूं? मैं जागरूकता को विचार कहता हूं, अवेयरनेस को, होश को। मैं मूर्च्छा को अविचार कहता हूं, सोए हुए पन को। जागे हुए पन को मैं विचार कहता हूं। क्योंकि जो सोया हुआ है वह अपनी नींद के कारण किसी भी जीवन की समस्या से सीधा साक्षात नहीं कर पाता।
एक आदमी एक घर में सोया हुआ हो और घर में आग लग जाए, वह सोया रहेगा, क्योंकि उसके बीच और मकान में लगी आग के बीच नींद की एक दीवाल है। उस नींद की दीवाल के कारण मकान में लगी आग की कोई खबर उसकी चेतना तक नहीं पहुंचती। लेकिन एक आदमी जागा हुआ है अपने घर में और मकान में आग लग जाए, तो क्या वह मकान में बैठा रहेगा? नहीं, आग लगी हुई स्थिति से उसकी चेतना साक्षात करेगी और बाहर निकलने का द्वार खोजेगी।
हम सारे लोग लेकिन अपनी-अपनी समस्याओं में घिरे हैं और कोई मार्ग नहीं खोज पाते, इससे यह सिद्ध होता है कि हम सोए हुए होंगे। नहीं तो हम मार्ग खोज लेते। हमने द्वार खोज लिया होता। जिंदगी में हमने कोई राह खोज ली होती, हम बाहर हो गए होते समस्याओं के। कोई आदमी समस्याओं के बाहर नहीं है, लेकिन हर आदमी घिरा है। बल्कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है समस्याएं बढ़ती चली जाती हैं। मौत के वक्त तक आदमी छोटा सा रह जाता है, समस्याओं का हिमालय उसके चारों तरफ खड़ा हो जाता है। होना उलटा चाहिए था, होना यह चाहिए था कि जिंदगी आगे बढ़ती, समस्याएं कम होतीं। क्योंकि आखिर जिंदा होने का मतलब क्या है फिर? होना यह था कि मरने के क्षण कोई समस्या न रह जाती। वह समाधान होता, वह समाधि होती। और तब मृत्यु मोक्ष बन जाती है। लेकिन हम तो समस्याएं बढ़ाते चले जाते हैं, मरते वक्त हम समस्याओं के सागर में होते हैं। तब मौत एक पीड़ा है। क्योंकि सारा जीवन गया व्यर्थ और एक समस्या हल न हुई। एक सूत्र खोला न जा सका। एक गांठ खुल न सकी। गांठ पर गांठ बनती चली गईं। तो जरूर हम सोए हुए होंगे।
सोए हुए होने का क्या अर्थ? वह हम समझ लें, क्योंकि सोया हुआ होना हमारी तीसरी गांठ है, हमारी परतंत्रता की, हमारी गुलामी की। मुक्ति के लिए जरूरी है कि हम जागरूक हो जाएं।
एक छोटी सी कहानी कहूंगा, ताकि मेरी बात समझ में आ सके।
जापान के एक बादशाह ने अपने बेटे को एक गुरु के आश्रम में भेजा। वह गुरु उसके गांव से निकला था और राजा ने उससे पूछा था कि मैं अपने लड़के को क्या सिखाऊं? तो उस गुरु ने कहा था, एक ही बात अगर तुम सिखा सको तो तुमने सब सिखा दिया। लड़के को जागना सिखा दो। राजा हैरान हुआ कि यह क्या बात है, लड़का रोज जागता है। उसने पूछा कि मैं समझा नहीं? तो उसने कहाः लड़के को भेज दो मेरे आश्रम में। मैं कोशिश करूंगा, शायद लड़का जाग जाए।
लड़के को भी हैरानी हुई कि जागना भी सिखाना पड़ेगा क्या? रोज तो हम जागते हैं सुबह। लेकिन गया। उस गुरु ने कहा। तुम आ गए हो, कल सुबह से तुम्हारी शिक्षा शुरू हो जाएगी। लेकिन स्मरण रहे, शिक्षा बड़ी अनूठी है। घबड़ाना मत। डरना भी मत। कोई खतरा होने को नहीं है। लेकिन थोड़ी कठिनाई से गुजरना पड़ेगा। क्योंकि सोए हुए आदमी को जागना सच में एक कठिनाई है। सोया हुआ होना एक सुख है। क्योंकि सोए हुए होने में जीवन की कोई समस्या परेशान नहीं करती। जागना एक पीड़ा है। क्योंकि सब समस्याएं परेशान करेंगी। बोध

में आएंगी, दिखाई पड़ेंगी। इसलिए तो कोई आदमी बहुत दुख में होता है, तो हम मॉरफिया का इंजेक्शन दे देते हैं ताकि वह सो जाए, ताकि फिर उसको तकलीफों का पता न रहे। तो उसने कहाः थोड़ी पीड़ा होगी जागने में, लेकिन स्मरण रखो, जो आदमी पूरी तरह जाग जाता है वह अपनी हर समस्या को हल कर लेता है। और फिर आती है एक शांति। फिर आता है एक आनंद।
जो सोए हुए में अनुभव होता है, वह है सुख। क्योंकि समस्याएं दिखाई नहीं पड़तीं। और जो जागने पर उपलब्ध होता है, वह है आनंद। क्योंकि तब कोई समस्याएं नहीं रह जाती हैं। थोड़ी पीड़ा होगी। उसने पूछाः क्या होगी मेरी शिक्षा? उसके गुरु ने कहाः कल से मैं किसी भी समय तुम्हारे ऊपर लकड़ी की तलवार से हमला कर दिया करूंगा। तुम खाना खा रहे हो, मैं पीछे से आकर हमला कर दूंगा, तो तुम सावधान रहना, कभी भी हमला हो सकता है। तुम बुहारी लगा रहे होओगे आश्रम में, और मैं पीछे से हमला कर दूंगा। तुम किताब पड़ रहे होओगे और हमला हो जाएगा। इसलिए हर वक्त खयाल रखना, दिन में दस-पच्चीस दफे तुम्हारे ऊपर हमला होने वाला। लकड़ी की तलवार से मैं चोट करूंगा। और जब तुम थोड़े जागरूक हो जाओगे, तो असली तलवार से भी किया जा सकेगा।
लड़का तो बहुत घबड़ाया कि यह कौन सी शिक्षा शुरू हो रही? लेकिन मजबूरी थी, बाप ने उसे वहां भेज दिया था और शिक्षा लेनी थी और लेनी पड़ेगी। सभी बच्चे ऐसी मजबूरी में शिक्षा लेते हैं। बाप भेज देते हैं और उनको लेनी पड़ती है। उस लड़के को भी लेनी पड़ी। लेकिन उसे पता न था कि एक बहुत अदभुत प्रक्रिया से वह गुजरने को है।
दूसरे दिन से हमला शुरू हो गया। पाठ शुरू हो गए। लड़का किताब पढ़ रहा है, पीछे से उसका गुरु हमला कर देता है। चोट खा जाता है, सिर में चोट आ जाती है, हड्डी पर चोट आ जाती है। पहले दिन ही उसको समझ आ गया कि यह तो बड़ा मुश्किल काम है। लेकिन सात दिन बीतते-बीतते उसे एक बात खयाल में आनी शुरू हुई, उसके भीतर कोई सावधानी, कोई सजगता पैदा हो रही है। वह कोई भी काम करता रहता है, तो भी एक खयाल निश्चितरूपेण उसकी चेतना के पीछे खड़ा रहता है कि हमला! हमला! तलवार आती है! गुरु आता है! जरा पैर की खटपट किसी की और लगता है कि वह आया! जरा आवाज, पक्षी बोल जाते हैं, हवा द्वार खड़खड़ा देती है, लगता है वह आया! सब काम करता रहता है लेकिन यह लगन, यह खयाल, यह स्मृति, यह माइंडफुलनेस बनी रहती कि वह आता है।
महीना बीतते-बीतते तो वह हैरान हो गया, जैसे कोई सावधानी का एक स्तंभ खड़ा हो गया भीतर। गुरु हमला करता है, हमले के साथ ही उसका हाथ उठ कर रक्षा कर लेता है। एक सावधानी है निरंतर। अब हमले में चोट नहीं लग पाती। अक्सर वह चोट से बच जाता है। अनजान, पीछे के हमले में भी चेतना रक्षा करती है। हम जानते हैं, एक मां रात सोती है, उसका बच्चा बीमार है, वह रोता है, कमरे में कोई नहीं सुन पाता, मां नींद में ही उसको थपथपा देती है और सुला देती है। तो उसकी चेतना में कहीं कोई बात जागरूक है, बच्चा बीमार है, कहीं रोए न, नींद में भी। हम इतने लोग हैं यहां, हम सारे लोग रात सो जाएं, फिर कोई आदमी आकर बुलाए--रहीम, रहीम, तो जो आदमी रहीम होगा उसको ही सुनाई पड़ जाएगा और बाकी लोग सोए रहेंगे। आवाज सबके कानों पर पड़ेगी, लेकिन रहीम रहीम नाम के प्रति थोड़ा जागरूक है, निरंतर का उसे स्मरण है। नींद में भी वह पहचान जाएगा मुझे कोई बुलाता है। वह उठेगा और कहेगा, कौन बुलाता? और बाकी लोग सोए रहेंगे। बाकी लोग को पता भी नहीं चलेगा, कोई आवाज आई और गई।
वह युवक महीने भर में सचेत हो आया। तीन महीने बीतते-बीतते तो हमला करना गुरु को मुश्किल हो गया। कैसी भी हालत में हमला हो, रक्षा हो जाती। उसके गुरु ने कहाः बेटे, तू एक परीक्षा से पार हो गया। लेकिन स्मरण रख, कल से अब रात में भी हमले शुरू हो जाएंगे। सोए हुए होते भी हमले होंगे। रात में समझ से रहना। दो-चार-दस दफा, जानते हो कि मैं बूढ़ा आदमी हूं, नींद मुझे ज्यादा आती भी नहीं, दो-चार-दस दफा मैं रात में चोट करूंगा। तैयार रहना। लड़का घबड़ाया, कि यह तो ठीक भी था कि जागने में कोई हमला करे तो सुरक्षा
हो जाए, नींद में क्या होगा? लेकिन उसे पता नहीं था, चेतना को जितने खतरे में डाला जाए वह उतनी ही जागती है, चेतना जितने खतरे से गुजरती है उतनी सजग हो जाती है। यह उसे आने वाले तीन महीनों में पता चला। नींद में भी उसे

धीरे-धीरे खयाल रहने लगा हमले का। नींद भी थी, भीतर एक सरकता हुआ स्वर भी था कि हमला हो सकता है। तीन महीने पूरे होते-होते नींद में भी हाथ उठने लगा और रक्षा होने लगी। सोया रहता, हमला होता, हाथ उठ जाता, तलवार रुक जाती। तीन महीने बाद उसके गुरु ने कहाः दूसरी परीक्षा भी तू पार कर गया। अब, अब असली तलवार की बारी है। अभी तक लकड़ी की तलवार थी।
लड़के ने कहाः अब मैं राजी हूं, अब कैसी भी तलवार हो। क्योंकि सवाल लकड़ी और असली तलवार का नहीं है। अब मैं समझ गया, सवाल तो मेरे जागे हुए होने का है। लेकिन उसी दिन उसने सोचा कि यह गुरु कल से असली तलवार का प्रयोग शुरू करेगा, बड़े खतरे का खेल है, ढाल हमेशा साथ रखनी है, असली तलवार को झेलना है, रोकना है, खयाल उसे आया कि कल से यह खेल शुरू होगा, छह महीने से मुझे यह परेशान किए हुए है, निश्चित ही कोई चीज जाग गई है भीतर जिसका मुझे कोई पता नहीं था कभी, लेकिन यह ब.ूढा इतना मुझे जगाने की कोशिश करता है, यह खुद भी जागा हुआ है या नहीं? आज मैं भी तो इस पर हमला करके देखूं? यह भी जागा हुआ है या नहीं?
सुबह का वक्त था, एक वृक्ष के नीचे उसका बूढ़ा गुरु कोई किताब बैठ कर पढ़ता था, उसकी सत्तर साल की उम्र थी। यह दूर काफी फासले पर दहलान में बैठा हुआ यह खयाल करता था कि आज मैं भी तो हमला करके देखूं? उधर से गुरु चिल्लायाः ठहर! ठहर! ऐसा मत कर देना। मैं बूढ़ा आदमी हूं, ऐसा मत कर देना। यह तो घबड़ाया आया, इसने कहा, मैंने कुछ किया नहीं, सिर्फ सोचा है। उसके गुरु ने कहाः थोड़े दिन ठहर जा, जब थोड़ी जागरूकता और बढ़ेगी तो दूसरे के भीतर सरकते विचार की प्रतिध्वनि भी, प्रतिध्वनि भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। उसकी तरंगें भी बोध को जगाती हैं। उसकी तरंगें भी खयाल को ले आती हैं। और जिस दिन तुझे वह भी हो जाएगा उस दिन मैं कहूंगा, तेरा काम पूरा हो गया, अब तू जा। जागरूकता का ऐसा अर्थ है।
चेतना सोई-सोई न हो, निरंतर सजग हो। निरंतर एक अवेयरनेस, एक होश चित्त
को जगाए रखे। हम तो सोए-सोए हैं। चलते हैं सोए-सोए, खाते हैं सोए-सोए। रास्ते पर देखें, एक किनारे खड़े होकर, कोई किसी को देखता नहीं, फुर्सत किसको है। रास्ते के किनारे कभी आधा घंटे खड़े हो जाएं। रास्ते पर चलते लोगों को गौर से देखें, आपको दिखाई पड़ जाएगा, वे बिल्कुल सोए हुए चले जा रहे हैं। कोई अपनी नींद में बड़बड़ाता चला जा रहा है, कोई अपनी नींद में बात करता चला जा रहा है, कोई हाथ के इशारे कर रहा है, किसी से चर्चा कर रहा है, जो मौजूद नहीं है आदमी, उससे चर्चा कर रहा है। यह आदमी जागा हुआ हो सकता है या सपने में है? लोगों को जरा गौर से देखें, उनके चेहरों को देखें, तो पता चल जाएगा कि वे एक नींद में चले जा रहे हैं। एक बेहोशी में सब कुछ हो रहा है। सारी दुनिया बेहोशी में चल रही है। इसलिए तो इतनी टकराहट होती है, इतनी दुर्घटनाएं होती हैं। इतना एक-दूसरे से मुठभेड़ हो जाती है। कोई जागा हुआ नहीं है। फिर थोड़ा अपने को भी देखें कि मैं जाग कर चलता हूं क्या? तो आप हैरान हो जाएंगे!
अभी यहां से लौटते वक्त जरा खयाल करें, इस दरवाजे से बाहर के दरवाजे
तक भी जाग कर जा सकते हैं क्या? क्या पूरी तरह होश से भरे हुए एक-एक कदम को जानते हुए, एक-एक श्वास को अनुभव करते हुए बाहर के दरवाजे तक जा सकते हैं? न जा पाएंगे, बीच में ही यह बात भूल जाएगी, दूसरे सब खयाल पकड़ लेंगे। और तब आप जान जाना कि दो क्षण भी जागना कठिन है, आर्डुअस है। और सबसे बड़ा मनुष्य के ऊपर बंधन यह मूर्च्छा है, जो उसे पकड़े हुए है सब तरफ से। वह सोया हुआ है। लेकिन अगर मैं आपसे कहूं कि आप सोए हुए हैं, तो आप नाराज हो जाएंगे। क्योंकि कोई आदमी यह सुनना पसंद नहीं करता कि मैं सोया हुआ हूं।
लेकिन स्मरण रखिए, अगर आप भ्रम से अपने को जागा हुआ समझ रहे हैं तो कभी जाग नहीं सकेंगे। इसलिए पहले अपनी नींद को स्वीकार कर लेना, समझ लेना जरूरी है।
एक जागरूकता ही विकसित हो जाए, तो आत्मा के साक्षात में ले जाती है।
और जागरूकता ही पूर्ण हो जाए, तो समग्र जीवन परमात्मा में परिवर्तित हो जाता है। सोए हुए आदमी के लिए संसार है, जागे हुए आदमी के लिए कोई संसार नहीं। सोया हुआ होना ही संसार है। जागा हुआ होना ही मोक्ष है, मुक्ति है।

ये थोड़ी से बातें मैंने कहीं। इसलिए नहीं कि मैंने जो कहा है उसे आप मान लेना। क्योंकि अगर आपने मेरी बात मानी, तो आपने परतंत्रता की पहली कड़ी और खींच कर बांध ली। मैं कौन हूं, जिसकी बात मानने की कोई जरूरत है? मैंने जो कहा, अगर आपने उसका अनुकरण किया, तो आप कभी स्वतंत्र नहीं हो सकेंगे। मैं कौन हूं, जिसकी बात का अनुकरण किया जाए? फिर मैंने किसलिए कहीं ये सारी बातें? इसलिए नहीं कि आप उन पर विश्वास कर लेंगे, बल्कि इसलिए कि आप बहुत निष्पक्ष, तटस्थता से उनके प्रति जागेंगे और विचार करेंगे। उन्हें दूर रख लेंगे, सामने रख लेंगे; मानने या न मानने का कोई सवाल नहीं है। दूर सामने रख कर उनको ऑब्जर्व कर सकेंगे, निरीक्षण कर सकेंगे। और बंधी हुई स्मृति के उत्तर को मत मान लेना, वह विचार नहीं है। नहीं तो भीतर से कोई कहेगा, अरे, यह बात तो शास्त्र में लिखी नहीं, यह ठीक नहीं हो सकती। यह स्मृति के उत्तर को मत मान लेना। या स्मृति कहे कि हां, यह बात बिल्कुल ठीक है, फलां-फलां संत ने यही बात कही है। गीता में भी यही लिखा है। इसको मत मान लेना। यह स्मृति है, इसके उत्तर यांत्रिक हैं, इसको कहना कि तुम चुप रहो। मुझे सीधी बात को देखने दो, तुम बीच में मत आओ। मैं सीधा इस सत्य के प्रति जागना चाहता हूं, जो कहा गया है, मैं सीधा उसे देख लेना चाहता हूं।
जाग कर अगर उसको देखने की कोशिश की, तो वह चाहे सही सिद्ध हो चाहे गलत, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उसे जाग कर देखने की प्रक्रिया में आपके जीवन में क्रांति होनी शुरू हो जाती है। वह जागने की प्रक्रिया, उसके प्रति मैंने जो कहा है, उसके प्रति जागने की प्रक्रिया आपके भीतर एक क्रांति को ले आती है, एक परिवर्तन ले आती है। जीवन एक नये आयाम में गतिमान हो जाता है।
परमात्मा करे, सोए हुए होने से वह जागरूकता की तरफ ले जाए। परमात्मा करे, भीतर हमें वह जगाए, जहां हम सोए हुए हैं। और हमारी कड़ियां और बंधन हमें दिखाए, जो हमने खुद बांध लिए हैं, ताकि हम उन्हें खोल सकें और मुक्त हो सकें। और चिल्लाते न रहें, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। और कड़ियों को, जंजीरों को, सींकचों को पकड़े भी न रहें। ये दोनों बातें विरोधी हैं। इनको देख लेना, समझ लेना है। इसके अतिरिक्त मेरा और कोई निवेदन नहीं है।

मेरी बातों को इन तीन दिनों में इतने प्रेम और शांति से सुना है, इतने
ही शांति और प्रेम से इन्हें सोचना भी। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।